जलतरंग

माझगांव डॉक शिपबिल्डर्स लिमिटेड की राजभाषा पत्रिका

अंक 8

सितंबर 2017

भारत के स्वतंत्रता सेनानियों को समर्पित

30 मई 2017 को रक्षा मंत्री, श्री अरुण जेटली से वर्ष 2014-15 के लिए "बेस्ट एक्सिलेंस" पुरस्कार प्राप्त करते हुए कमोडोर राकेश आनन्द, अध्यक्ष एवं प्रबंध निदेशक तथा श्री संजीव शर्मा, निदेशक (वित्त)

21 जुलाई 2017 को मुंबई टॉलिक की 59वीं बैठक में माझगांव डॉक शिपबिल्डर्स लिमिटेड की राजभाषा पत्रिका "जलतरंग" को "श्रेष्ठ गृहपत्रिका" के लिए प्रथम पुरस्कार ट्रॉफी प्राप्त करते हुए कमोडोर राकेश आनन्द, अध्यक्ष एवं प्रबंध निदेशक, श्री संतोष कुमार मल्लिक, मप्र (मासं) एवं अन्य अधिकारी

जलतरंग

माझगांव डॉक शिपबिल्डर्स लिमिटेड की राजभाषा पत्रिका

मुख्य परामर्शदाता
श्री संतोष कुमार मल्लिक, महाप्रबन्धक (मानव संसाधन)

संपादक मण्डल
श्री सोपान एस कांबले (मानव संसाधन एवं कर्मचारी संबंध)
श्री श्रीनिवास सिन्हा, उप महाप्रबन्धक (मानव संसाधन)
सुश्री गीता सुनतकरी, मुख्य प्रबंधक (योजना- पूर्व खंड)
श्री रामप्रीत यादव, सहायक प्रबन्धक, राजभाषा
श्री पी डी सिद्दीकी, सहायक प्रबन्धक, राजभाषा
सुश्री जयंतिका मुखर्जी, हिन्दी अनुवादक

मुद्रक
न्यू जैक प्रिंटिंग प्रेस प्रा. लि.
बी-5/130, मित्तल इंडस्ट्रियल इस्टेट, मरोल नाका,
अंधेरी-कुर्ला रोड,मुंबई - 400 059
फोन नं. +91-22-67721000

प्रकाशक
राजभाषा अनुभाग
माझगांव डॉक शिपबिल्डर्स लिमिटेड
माझडॉक हाउस, दूसरी मंजिल, डॉकयार्ड रोड, मुंबई - 400 010
फोन नं. 0+91-22-23710456

विषय सूची

वासुदेव बलवंत फड़के - *कल्याणी पाटील* 06

झलकारी बाई - *राजराजेश्वरी भट* 09

बिरसा मुंडा - *श्रीनिवास सिन्हा* 11

तात्या टोपे - *योगीराज पोतनीस* 14

मौलाना मज़रुल हक - *राकेश कुमार* 17

लाला हरदयाल - *शारल पटेल* 20

खुदीराम बोस - *दत्ता प्रसाद मंत्री* 23

श्याम जी कृष्ण वर्मा - *नितिन बनाक* 25

चंद्रसिंह भंडारी "गढ़वाली" - *सिमनलाल आर्य* 27

रेरा - *पी डी सिद्दीकी* 29

चाफ़ेकर बंधु - *प्रदीप महाडेश्वर* 32

एमडीएल में कार्यक्रम की झलकियाँ 34

उधम सिंह - *अरुणेश मुद्गल* 40

कनकलता बरुआ - *शिफॉन सरकार* 43

अशफाक़ उल्ला खान - *राजेश टमटा* 45

लक्ष्मी सहगल - *डॉ साधना कोली* 49

बाबा राघव दास - *रामप्रीत यादव* 51

डॉ हरे कृष्ण माहताब - *सत्यनारायण प्रधान* 53

सरदार बुद्धसिंह - *पी. के. सिंह* 55

स्वामी श्रद्धानन्द - *सुधीर देठे* 57

सुरेन्द्र मोहन घोष - *राजीव झा* 59

स्वतंत्रता और हिन्दी - *जयंतिका मुखर्जी* 63

जीएसटी - *लीना ढमढेरे* 66

मजदूर से उप महाप्रबंधक - *दिलीप चंदन शिवे* 69

आजाबे जिंदगी (गज़ल) - *एच यू सिद्दीकी* 72

इस पत्रिका में दिये गये लेखकों के विचार से सम्पादक मंडल का सहमत होना आवश्यक नहीं है।

अध्यक्ष एवं प्रबंध निदेशक का संदेश

मान्यवर,

पत्रिका के आठवें अंक के साथ मुझे आपसे संवाद स्थापित करने का अवसर मिला है। ''जलतरंग'' के प्रत्येक अंक को आकर्षक, ज्ञानवर्धक सूचनापरक रूप में प्रकाशित किया जाता है। पत्रिका का यह अंक देश के उन महान स्वतंत्रता सेनानियों को समर्पित है जिन्होंने स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए बलिदान होने में गौरव की अनुभूति किया। स्वतंत्रता के लिए असंख्य लोगों ने कुर्बानी दी है। उनमें से प्रमुख भगतसिंह, चन्द्रशेखर आज़ाद, चित्तरंजन घोष, लाला लाजपत राय, बालगंगाधर तिलक, विपिन चन्द्र पाल, नेताजी सुभाष चन्द्र बोस, मौलाना अबुल कलाम आज़ाद आदि के बारे में इतिहास की पुस्तकों में विस्तार से उल्लेख किया गया है लेकिन बहुत से स्वतंत्रता सेनानियों को वह सम्मान नहीं मिला जिसके वह भी हकदार थे। वे लोग निस्वार्थ भाव से देश के लिए शहीद हुए हैं।

इस अंक में कुछ प्रसिद्ध स्वतंत्रता सेनानियों के साथ-साथ उन स्वतंत्रता सेनानियों को याद करने और सम्मान देने का प्रयास किया गया है जिनके योगदान को इतिहास की पुस्तकों में कम स्थान दिया गया है। यह देश के प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य है कि स्वतंत्रता सेनानियों को राष्ट्रीय त्योहारों और उनके जन्म दिन पर स्मरण करें। किसी भी देश के स्वतंत्रता सेनानी राष्ट्र के गौरव तथा आदर्श व्यक्ति होते हैं जिनके त्याग और तपस्या के बल पर राष्ट्र में नये लोकहितकारी विचार पैदा होते हैं। कम्पनी के कर्मचारी अपने नियमित जहाज एवं पनडुब्बी निर्माण कार्य के अलावा साहित्यिक विषयों पर अपने मनोगत पत्रिका के माध्यम से व्यक्त करते हैं।

मैं आशा करता हूँ ''जलतरंग'' का यह अंक अपने पाठको में जागरूकता फैलाने में सफल होगा।

शुभ कामनाओं सहित

कमोडोर राकेश आनन्द, भानौ (नि.)
अध्यक्ष एवं प्रबंध निदेशक

महाप्रबंधक मानव संसाधन का विचार

कम्पनी की गृह पत्रिका ''जलतरंग'' के सात अंक मेरे इस कम्पनी में नियुक्ति से पहले प्रकाशित हुए हैं और प्रत्येक अंक ने अपनी गुणवत्ता को सिद्ध किया है जिसका प्रमाण है कि प्रत्येक अंक को पुरस्कार प्राप्त हुए हैं।

मुझे जानकर बहुत प्रसन्नता हुई कि कम्पनी की पत्रिका ने अपनी गुणवत्ता को कायम रखते हुए निरंतर सुधार का प्रयास जारी रखा है।

इस अंक को विशेष रूप से देश के उन स्वतंत्रता सेनानियों को अर्पित किया गया है जिनके योगदान को उतना महत्व नहीं दिया गया जितना मिलना चाहिए था।

कुछ लोगों ने अप्रत्यक्ष रूप से महान स्वतंत्रता सेनानियों की सहायता किया था जिसके कारण वह अपना कर्तव्य निर्वाह सफलता पूर्वक कर सके।

उनके त्याग, बलिदान, साहस की कथा इतिहास की पुस्तकों में पूरे देश में पढ़ाई जाती है क्योंकि स्वतंत्रता सेनानी पूरे देश के नायक हैं।

आठवें अंक में कुछ ऐसे नायकों का वर्णन किया गया जिनके बारे में लोगों को क्षेत्रीय आधार पर जानकारी है परन्तु राष्ट्रीय स्तर पर उनके योगदान को उतना सम्मान नहीं मिला है उन्हें जितना दिया जाना था। उनका योगदान भी राष्ट्रीय सम्मान के लायक है।

मुझे उम्मीद है कि पत्रिका का यह अंक अपने उद्देश्य को पूरा करने में सफल होगी।

मैं राजभाषा अनुभाग की सराहना करता हूँ उन्होंने इस विषय पर पत्रिका प्रकाशित करने का प्रयास किया है।

संतोष कुमार मल्लिक
महाप्रबंधक (मानव संसाधन एवं विभाग प्रमुख)

प्रस्तावना

जलतरंग का आठवाँ अंक विशेष रूप से स्वतंत्रता सेनानियों को समर्पित है। स्वतंत्रता का पहला आंदोलन 1857 की क्रांति से आरंभ होता है जब ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध मंगल पांडे ने बंगाल से विद्रोह की बुनियाद रखी। धीरे-धीरे यह आंदोलन पूर्व से मध्य भारत की ओर बढ़ने लगा। सन् 1857 में अवध के नवाब वाजिद अली शाह को अंग्रेजों ने सत्ता से बेदखल कर कलकत्ता में नज़रबंद कर दिया। उनकी साहसी बेगम हज़रत महल की अगुवाई में 1857 की लड़ाई अवध के मुख्य केंद्र लखनऊ और कानपुर में शुरू हुई जिसमें मुख्य भूमिका तत्कालीन हिन्दू राजाओं, नवाबों और जमींदारों ने निभाई थी। अंग्रेजों ने लखनऊ पर कब्जा करने के उपरांत कानपुर और झाँसी पर आक्रमण किया था। स्वतंत्रता की आग जलाने वालों की संख्या धीरे-धीरे बुझा दी गई। कुछ अंतराल के बाद ब्रिटिश सेवा में कार्यरत हिन्दुस्तानी सेनानियों ने उस आग को फिर हवा दी। पंजाब केसरी लाला लाजपत राय ने 30 अक्तूबर 1928 को साइमन कमीशन के विरुद्ध लाहौर में आंदोलन आरंभ किया जिसका कारण सन् 1919 में जालियाँवाला बाग की घटना थी। आंदोलन में लाला लाजपत राय शहीद हो गए जिसके परिणामस्वरूप शहीद भगत सिंह ने क्रांतिकारी संगठन चन्द्रशेखर आजाद के नेतृत्व में संगठित किया और लाला लाजपत राय की मृत्यु का बदला आरोपी ब्रिटिश अधिकारी सांडर्स की हत्या कर लिया। सन् 1920 के बाद कांग्रेस में गांधीजी सबसे महत्वपूर्ण नेता हुए। इनके प्रयास से कांग्रेस संगठित और प्रभावशाली संगठन बना, जिसमें तत्कालीन बुद्धिजीवी, वकील, अध्यापक, व्यापारी स्वार्थ त्यागकर शामिल हुए। स्वतंत्रता की ज्वाला को 1857 के बाद अनेकों स्वतंत्रता प्रेमियों ने अपनी सामर्थ्य के अनुसार जागृत रखा था। धीरे-धीरे त्यागी, स्वाभिमानी राष्ट्रवादी लोग जुड़ते गए। आंदोलन मजबूत होता रहा जिसके कारण स्वतंत्रता प्राप्त हुई। इसमें मुख्य स्वतंत्रता सेनानियों के अप्रत्यक्ष सहयोगियों का योगदान कम नहीं था। समाज में जागरूकता का प्रसार होने में समय लगना स्वाभाविक है क्योंकि कोई भी मनुष्य अपनी सोच एकाएक परिवर्तित नहीं कर सकता है। दुनिया के सभी देश गुलाम रहे हैं और अत्याचार का प्रतिकार करने से स्वतंत्र हुए हैं।

एस एस कांबले
महाप्रबंधक (मानव संसाधन एवं कर्मचारी संबंध)

वासुदेव बलवंत फड़के

कल्याणी पाटील

वासुदेव बलवंत फड़के महान देशभक्त, चिंतक, स्वाभिमानी, परोपकारी तथा निस्वार्थी व्यक्ति थे। वह देश के पहले क्रांतिकारी थे जिन्होंने स्वतंत्रता के बारे में चिंतन किया और लोगों को स्वतंत्रता के प्रति जागरुक करने का प्रयास किया था। इनका जन्म 04 नवम्बर 1845 को रायगढ़ जिला, पनवेल तहसील के सिरधोन गाँव में एक चितपावन ब्राम्हण परिवार में हुआ था। ब्रिटिश शासन के दौरान किसानों की दुर्दशा देखकर वह बहुत दुखी हुए और उनका विश्वास था कि किसानों की गरीबी का कारण ब्रिटिश शासन् है। शासन् व्यवस्था ने किसानों पर कर लगाकर गरीब होने के लिए मजबूर किया है। उस समय देश के हर क्षेत्र में औद्योगिक विकास नहीं हुआ था और जीविका का मुख्य साधन खेती थी।

बचपन में उन्हें स्कूली शिक्षा के लिए भेजा गया था लेकिन वह उच्च शिक्षा प्राप्त नहीं कर सके, केवल 10वीं की परीक्षा पास करने के बाद स्कूल छोड़ दिये। फिर भी अपनी योग्यता के बल पर पनवेल तहसील से चलकर पुणें पहुचे और ब्रिटिश सेना के लेखा विभाग में 15 वर्ष तक सेवा किया। एक बार उनकी माता जी बीमार पड़ीं और इसकी सूचना फड़के तक पहुँचाई गई कि माता जी गम्भीर रूप से बीमार हैं। उन्होंने छुट्टी के लिए आवेदन किया लेकिन ब्रिटिश अधिकारी ने छुट्टी मंजूर नहीं किया और उनकी माता का देहान्त हो गया। इससे दुखी होकर उन्होंने नौकरी से इस्तीफा दे दिया। बचपन में उनको कुश्ती, घुड़सवारी करने का शौक था। पुणें में उस समय एक प्रसिद्ध समाज सेवक थे जिनका नाम क्रांतिवीर लहूजी वस्ताद साल्वे था। वह फड़के जी के ज्ञान-गुरू थे। साल्वेजी अपने समय के प्रसिद्ध पहलवान थे। वह पूना में पहलवानी के लिए तालीम केंद्र चलाते थे। साल्वे जी अछूत सम्प्रदाय से सम्बंधित थे और उनकी जाति मांग थी। उस समय हिन्दू समाज में जाति प्रथा का कठोरता से पालन होता था और अछूत समुदाय के लोगों के साथ अमानीय व्यवहार किया जाता था। लहूजी साल्वे समाज के जागरुक नागरिक होने के कारण जवान बच्चों को स्वतंत्रता का महत्व समझाते थे। ब्रिटिश सत्ता से स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए लोगों में जागरूकता का प्रसार करने की अपनी नैतिक जिम्मेदारी निभाते थे। वह अपनी सामाजिक स्थिति जानते थे जिसके कारण समाज के प्रबुद्ध वर्ग को जागृत करने में सकुचाते थे। उन्होंने प्रयास भी किया लेकिन कोई समर्थन देने के लिए तैयार नहीं था। उसी समय वासुदेव बलवंत फड़के ब्रिटिश सेवा से इस्तीफा देकर आये थे। वह सामाजिक व्यवस्था और ब्रिटिश शासन् की उदासीनता से परेशान थे। लहूजी साल्वे ने फड़के जी से सम्पर्क किया और परतंत्रता की बुराइयों के बारे में उनको समझाया। फड़के जी उनकी तालीम केंद्र से पहलवानी की तालीम लेते थे। लहूजी साल्वे ने वासुदेव बलवंत फड़के को बताया कि समाज को जागरूक एवं संगठित करने की जरूरत है, बिना एकता के ब्रिटिश शासन को झुकाया नहीं जा सकता है। सामाजिक उच्च वर्ग की उदासीनता और मानसिक गुलामी के कारण फड़के जी ने समाज के निम्न वर्ग से सम्बंधित लोगों को एकजुट करने का प्रयास किया। समाज के कोली, भील, धनगर समुदाय के लोगों को शस्त्र चलाने का प्रशिक्षण दिया और एक क्रांतिकारी समूह तैयार किया और इसका नाम रमोशी रखा। इस शस्त्रधारी क्रांतिकारी समूह ने ब्रिटिश सत्ता को हटाने के लिए प्रयास किया। उस समय वासुदेव बलवंत फड़के स्वातंत्र्य प्रेमी लोगों का भाषण सुनने जाया करते थे। एक बार महादेव गोविंद रानाडे के भाषण सुनने गए। अपने

भाषण में रानाडे जी ने बताया कि ब्रिटिश सत्ता के कारण देश की आर्थिक हानि हो रही है। फड़के जी की समझ में यह बात आ गई थी कि ब्रिटिश शासन् के कारण समाज में परेशानी बढ़ रही थी। सन् 1870 में एक आंदोलन लोगों की शिकायतों को दूर करने के उद्देश से किया गया था। फड़के जी ने एक्य वर्धीनी सभा का गठन किया जिसका उद्देश्य युवाओं को शिक्षित करना था।

महाराष्ट्र शिक्षा समिति के सह संस्थापक

उस समय पुणें में तीन समाज सुधारक तथा क्रांतिकारी थे। श्री लक्ष्मण नारहर इंदापुरकर, श्री वामन प्रभाकर भावे तथा श्री वासुदेव बलवंत फड़के। फड़के जी ने सन् 1860 में पूना नेटिव इंस्टिट्यूशन् की स्थापना की जो बाद में महाराष्ट्र शिक्षा सभा के नाम से जाना गया। बाद में फड़के जी ने पुणें में भावे स्कूल खोला और इसके माध्यम से राष्ट्रीय शिक्षा की नींव रखी। शस्त्र खरीदने के लिए उनके संगठन ने सरकारी खजाने को लूटा और धन की प्राप्ति के लिए कई जगह डकैती की। इन घटनाओं से ब्रिटिश सरकार डर गई और गम्भीरता से प्रयास किया कि वासुदेव की क्रांतिकारी गतिविधियों को रोका जाय। डॉ. आर. सी. मजूमदार, भारतीय इतिहासकार ने उनके बारे में लिखा है कि वासुदेव बलवंत फड़के भारत में उग्र राष्ट्रवाद के जनक हैं। उन्होंने सबसे पहले देश में क्रांतिकारी संगठन खड़ा किया। उनके द्वारा स्थापित संस्थान अप्पासाहेब गरवारे विद्यालय, एमईएस पेरू गेट भावे स्कूल, विमला बाई गरवारे स्कूल और रानी लक्ष्मी बाई महिला सैनिक स्कूल का संचालन करती है और अन्य ऐसी 51 शिक्षण संस्थाओं को छह जिलों में संचालित करती थी।

वासुदेव बलवंत फड़के की मूर्ति

सन् 1875 में ब्रिटिश सरकार ने बड़ौदा के तात्कालिक शासक गायकवाड़ को अपदस्थ कर दिया। इसके विरोध में वासुदेव बलवंत फड़के ने ब्रिटिश सत्ता के विरोध में भाषण देना आरम्भ किया। उस समय पुणें में अकाल पड़ा था। लोग दवा के अभाव में तड़प तड़पकर मर रहे थे और अंग्रेजी सरकार जनता के प्रति उदासीन थी। इसकी पूरी जानकारी इकट्ठा करने के लिए फड़के जी पूरे पठारी क्षेत्र का दौरा करने का निश्चय किया और यात्रा के दौरान वह लोगों से निवेदन करते थे कि आप लोग देश को स्वतंत्र करने का प्रयास करें। इस कार्य में उच्च जाति का समर्थन नहीं मिल रहा था इसलिए उन्होंने रामोशी जाति के लोगों को संगठित किया। लगभग 300 लोगों का विद्रोही समूह बनाया। वह स्वयं गोली चलाना, घुड़सवारी करना और तलवार चलाने की कला सीखे और संगठन के सदस्यों को सिखाया। इनके संगठन का मुख्य उद्देश ब्रिटिश शासन् से देश को मुक्त करना था। वासुदेव बलवंत फड़के जी एक सेना गठित करना चाहते थे लेकिन धन की कमी के कारण ऐसा सम्भव नहीं हो पा रहा था। इसके लिए सरकारी खजाने से चोरी करने की योजना बनाई। इस योजना का प्रयोग सबसे पहले पूना जिले के शिरूर तालुका में धमरी गाँव पर किया गया क्योंकि ब्रिटिश शासन् द्वारा वसूला गया आयकर गाँव के व्यापारी व्यक्ति श्री बालचंद फौजमल शंकला के घर पर रखा गया था। इस डाका का उद्देश्य अकाल से पीड़ित ग्रामवासियों की सहायता करना था। इस चोरी से 400 रुपये की प्राप्ति हुई, लेकिन इस चोरी से उनका नाम खूंखार डकैत के रूप में मशहूर हो गया। इस चोरी के बाद ब्रिटिश सरकार के सिपाही और जासूस उनके पीछे लग गए। अपना बचाव करने के लिए फड़के जी एक गाँव से दूसरे गाँव में भागते रहे और अपने शुभचिंतकों और सहानुभूति रखने वालों के घर छिपते रहे। ये सभी शुभचिंतक समाज के निम्न वर्ग से संबन्धित थे। ग्रामवासी उनके उत्साह और दृढ़ता से प्रभावित थे। नानागाँव के ग्रामवासियों ने उनको सुरक्षा प्रदान किया और स्थानीय जंगल में छिपाया। ग्रामवासियों की सामान्य योजना थी कि ब्रिटिश शासन् के सभी संचारों से सम्बंध खत्म कर दिया जाय और बाद में सरकारी खजाने पर डाका डाला जाय। इन छापों का मुख्य उद्देश्य अकाल प्रभावित किसान समुदाय को भोजन की व्यवस्था करना था। वासुदेव बलवंत फड़के ने इस प्रकार अनेकों गावों में डाका डाला। पुणें जिले के शिरूर और खेड तालुका के गावों में डाका डाला और रुपया इकट्ठा किया। रामोशी समुदाय के अग्रणी नेता दौलतराव नाईक फड़के के मुख्य समर्थक तथा शुभचिंतक थे। उन्होंने योजना बनाई कि पश्चिमी घाट के कोंकण क्षेत्र की तरफ बढ़कर धन इकट्ठा किया जाय। 10 नवम्बर 1879 को इनके संगठन सदस्यों ने प्लास्पे और चीखली गावों पर छापा मारकर 1.5 लाख इकट्ठा किया। जब ये लोग माढ़घाट की ओर वापस आ रहे थे, तब अंग्रेज सेना अधिकारी मेजर डेनियल को सूचना मिली कि इसी रास्ते से वे लूट के माल सहित वापस आ रहे हैं। अंग्रेज सेना की टुकड़ी ने दौलतराव नाईक पर हमला कर दिया। डैनियल ने नाईक को गोली मार दिया जिससे उनकी मृत्यु हो गयी। नाईक की मृत्यु फड़के के विद्रोही संगठन के लिए बड़ा झटका थी। दूसरे लोगों से किसी प्रकार का समर्थन मिलने की आशा नहीं होने के कारण वासुदेव बलवंत फड़के दक्षिण की तरफ बढ़ने के लिए मजबूर हुए और श्री शैला मलिकार्जुन मंदिर पहुँचे।

वहीं छिपकर रहने लगे। कुछ समय बाद देशभक्ति की भावना ने फिर जोर मारा और उन्होंने 500 लोगों की एक रोहिला सेना खड़ा किया जिससे कि फिर से स्वतंत्रता की लड़ाई शुरू की जा सके। फड़के जी की भावी योजना थी कि एक साथ देश भर में ब्रिटिश के खिलाफ आक्रमण किया जाय लेकिन उनके इस प्रयास में बहुत कम सफलता मिली। एक बार उनका सामना ब्रिटिश सेना के साथ घानूर गाँव में हुआ। इस घटना के बाद ब्रिटिश सरकार ने उनकी गिरफ्तारी के लिए इनाम की घोषणा की। बहादुर वासुदेव बलवंत फड़के ने बिना डरे मुंबई राज्यपाल के विरुद्ध गिरफ्तार करने वाले को इनाम देने की घोषणा कर दी और यह भी घोषित कर दिया कि जो लोग यूरोपियन लोगों की हत्या करेंगे प्रत्येक हत्या के लिए इनाम दिया जाएगा। इसके अलावा सरकार के विरुद्ध अन्य प्रकार की धमकियाँ भी जारी कर दी।

अपनी सुरक्षा का ध्यान रखते हुए वह हैदराबाद राज्य में रहने लगे। उनका इरादा वहाँ अपनी सेना में रोहिला तथा अरबों को शामिल करना था। इनके योजना की खबर ब्रिटिश सरकार को ज्ञात हुई। इनको पकड़ने के लिए अंग्रेज अधिकारी मेजर हेनरी बिलियन डैनियल और हैदराबाद निजाम का पुलिस कमिश्नर अब्दुल हक, दिन-रात पीछा करने लगे। ब्रिटिश सरकार ने जो इनाम घोषित किया था उसका फल सामने आ गया। किसी व्यक्ति ने फड़के के साथ विश्वासघात कर दिया। उस समय फड़के जी एक मंदिर में छिपे हुए थे। गुप्त सूचना देकर किसी ने उनको गिरफ्तार करा दिया। गिरफ्तारी से पहले भयंकर लड़ाई हुई। हैदराबाद इस्टेट के कालाडगी जिले में 20 जुलाई 1879 को इन्हें गिरफ्तार कर मुकदमा चलाने के लिए पुणे लाया गया। गणेश वासुदेव जोशी, जिन्हें प्रेम से लोग सार्वजनिक काका कहते थे, उन्होंने फड़के जी का बचाव पक्ष रखा। वासुदेव बलवंत फड़के और उनके सहयोगियों को जिला सत्र न्यायालय भवन में रखा गया जो संगम पुल के पास था। आज वहाँ राज्य गुनाह अन्वेषण विभाग (CID) की बिल्डिंग है। उन्होंने अपनी डायरी में योजना तथा कार्यों का ब्योरा लिखा था जो उनके विरुद्ध सबूत के रूप में अंग्रेजों ने इस्तेमाल किया। यह डायरी उनके कारावास का कारण बनी। सजा के तौर पर इनको आजीवन कारावास का दंड मिला। उनको एडेन की जेल में स्थानांतरित किया गया। अपनी बुद्धि एवं बहादुरी से वह जेल के दरवाजे का हिंजिस खोलकर दिनांक 13.02.1883 जेल से भाग गए लेकिन यह पलायन अल्पकालिक सिद्ध हुआ। शीघ्र ही वह फिर से गिरफ्तार कर लिए गए। वासुदेव बलवंत फड़के ने इस सजा के विरुद्ध भूख हड़ताल कर दिया और 17 फरवरी 1883 को भूख हड़ताल के कारण जीवन लीला समाप्त हो गई। इस प्रकार देश का एक नौजवान स्वतंत्रता की इच्छा के साथ दुनिया से चला गया।

वसुदेव बलवंत फड़के का आवास

झलकारी बाई

राजराजेश्वरी भट

झलकारी बाई झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई की नियमित सेना में महिला शाखा दुर्गा दल की सेनापति थीं। वे लक्ष्मीबाई की हमशक्ल भी थीं इस कारण शत्रु को धोखा देने के लिए वह रानी के वेश में भी युद्ध करती थीं। अपने अंतिम समय में भी वह रानी के वेश में युद्ध करते हुए अंग्रेजों के हाथों पकड़ी गयीं और रानी को किले से भाग निकलने का अवसर मिल गया। उन्होंने प्रथम स्वाधीनता संग्राम में झाँसी की रानी के साथ ब्रिटिश सेना के विरुद्ध अद्भुत वीरता से लड़ते हुए ब्रिटिश सेना के कई हमलों को विफल किया था। यदि लक्ष्मीबाई के सेनानायकों में से एक ने उनके साथ विश्वासघात न किया होता तो झाँसी का किला ब्रिटिश सेना के लिए प्राय: अभेद्य था। झलकारी बाई की गाथा आज भी बुंदेलखंड की लोकगाथाओं और लोकगीतों में सुनी जा सकती है।

भारत सरकार ने 22 जुलाई 2001 में झलकारी बाई के सम्मान में एक डाक टिकट जारी किया है। उनकी प्रतिमा और एक स्मारक अजमेर, राजस्थान में निर्माणाधीन है। उत्तर प्रदेश सरकार द्वार उनकी एक प्रतिमा आगरा में स्थापित की गयी है, साथ ही उनके नाम से लखनऊ में एक धर्मार्थ चिकित्सालय भी शुरु किया गया है।

प्रारंभिक जीवन

झलकारी बाई का जन्म 22 नवम्बर 1830 को झाँसी के पास के भोजला गाँव में एक निर्धन कोली परिवार में हुआ था। झलकारी बाई के पिता का नाम सदोवर सिंह और माता का नाम जमुना देवी था। जब झलकारी बाई बहुत छोटी थीं तब उनकी माँ की मृत्यु हो गयी थी और पिता ने उन्हें एक लड़के की तरह पाला था। उन्हें घुड़सवारी और हथियारों का प्रयोग करने में प्रशिक्षित किया गया था। उन दिनों की सामाजिक परिस्थितियों के कारण उन्हें कोई औपचारिक शिक्षा तो प्राप्त नहीं हो पाई, लेकिन उन्होंने खुद को एक अच्छे योद्धा के रूप में विकसित किया था। झलकारी बचपन से ही बहुत साहसी और दृढ़ प्रतिज्ञ बालिका थी। झलकारी घरेलू काम के अलावा पशुओं के रखरखाव और जंगल से लकड़ी इकट्ठा करने का काम भी करती थी। एक बार जंगल में उसकी मुठभेड़ तेंदुए के साथ हो गयी थीं और झलकारी ने अपनी कुल्हाड़ी से उस तेंदुए को मार डाला था। एक अन्य अवसर पर जब डकैतों के एक गिरोह ने गाँव के एक व्यवसायी पर हमला किया तब झलकारी ने अपनी बहादुरी से उन्हें पीछे हटने को मजबूर कर दिया था। उसकी उस बहादुरी से खुश होकर गाँव वालों ने उसका विवाह रानी लक्ष्मीबाई की सेना के एक सैनिक पूरन कोरी से करवा दिया। पूरन भी बहुत बहादूर था और पूरी सेना उसकी बहादुरी का लोहा मानती थी। एक बार गौरी पूजा के अवसर पर झलकारी गाँव की अन्य महिलाओं के साथ महारानी को सम्मान देने झाँसी के किले में गयीं। वहाँ रानी लक्ष्मीबाई उन्हें देख कर अवाक रह गयीं क्योंकि झलकारी बाई बिल्कुल रानी लक्ष्मीबाई की तरह दिखती थीं। अन्य औरतों से झलकारी की बहादुरी के किस्से सुनकर रानी लक्ष्मीबाई बहुत प्रभावित हुईं। रानी ने झलकारी को दुर्गा सेना में शामिल करने का आदेश दिया। झलकारी ने यहाँ अन्य महिलाओं के साथ बंदूक चलाना, तोप चलाना और तलवारबाजी का प्रशिक्षण लिया। यह वह समय था जब झाँसी की सेना को किसी भी ब्रिटिश दुस्साहस का सामना करने के लिए मजबूत बनाया जा रहा था।

ग्वालियर में झलकारी बाई की प्रतिमा

स्वाधीनता संग्राम में भूमिका

लार्ड डलहौजी की राज्य हड़पने की नीति के चलते ब्रिटिशों ने निःसंतान लक्ष्मीबाई को उनका उत्तराधिकारी गोद लेने की अनुमति नहीं दी, क्योंकि वे ऐसा करके राज्य को अपने नियंत्रण में लाना चाहते थे। हालांकि ब्रिटिश की इस कार्रवाई के विरोध में रानी के सेनानायक और झाँसी के लोग रानी के साथ लामबंद हो गये और उन्होंने आत्मसमर्पण करने के बजाय ब्रिटिशों के खिलाफ हथियार उठाने का संकल्प लिया। अप्रैल 1858 के दौरान लक्ष्मीबाई ने झाँसी के किले से अपनी सेना का नेतृत्व किया और ब्रिटिश और उनके स्थानीय सहयोगियों द्वारा किये कई हमलों को नाकाम कर दिया। रानी के सेनानायकों में से एक दूल्हेराव ने धोखा दिया और किले का एक सुरक्षित द्वार ब्रिटिश सेना के लिए खोल दिया। जब किले का पतन निश्चित हो गया तो रानी के सेनापतियों और झलकारी बाई ने उन्हें कुछ सैनिकों के साथ किला छोड़कर भागने की सलाह दी। रानी अपने घोड़े पर सवार होकर कुछ विश्वस्त सैनिकों के साथ झाँसी से दूर निकल गईं। झलकारी बाई का पति पूरन किले की रक्षा करते हुए शहीद हो गया लेकिन बजाय अपने पति की मृत्यु का शोक मनाने के, झलकारी बाई ने ब्रिटिशों को धोखा देने की एक योजना बनाई। झलकारी ने लक्ष्मीबाई की तरह कपड़े पहने और झाँसी की सेना की कमान अपने हाथ में ले ली। वह किले के बाहर निकल कर ब्रिटिश जनरल ह्यूग रोज के शिविर में उससे मिलने पहूँची। ब्रिटिश शिविर में पहुँचने पर उसने चिल्लाकर कहा कि वह जनरल ह्यूग से मिलना चाहती है। रोज और उसके सैनिक प्रसन्न थे कि न सिर्फ उन्होंने झाँसी पर कब्जा कर लिया है बल्कि जीवित रानी भी उनके कब्ज़े में है। जनरल ह्यूग रोज़ उसे रानी ही समझ रहा था। उसने झलकारी बाई से पूछा कि उसके साथ क्या किया जाना चाहिए? झलकारी बाई ने दृढ़ता के साथ कहा, मुझे फाँसी दो। जनरल ह्यूग रोज झलकारी का साहस और उसकी नेतृत्व क्षमता से बहुत प्रभावित हुआ और झलकारी बाई को रिहा कर दिया। इसके विपरीत कुछ इतिहासकार मानते हैं कि झलकारी इस युद्ध के दौरान वीरगति को प्राप्त हुईं। एक बुंदेलखंड किंवदंती है कि झलकारी के इस उत्तर से जनरल ह्यूग दंग रह गया और उसने कहा कि "यदि भारत की 1% महिलायें भी उसके जैसी हो जायें तो ब्रिटिशों को जल्दी ही भारत छोड़ना होगा"।

ऐतिहासिक एवं साहित्यिक उल्लेख

मुख्यधारा के इतिहासकारों द्वारा झलकारी बाई के योगदान को बहुत विस्तार नहीं दिया गया है, लेकिन आधुनिक स्थानीय लेखकों ने उन्हें गुमनामी से उभारा है। अरुणाचल प्रदेश के राज्यपाल (21/10/1993 से 16/05/1999 तक) और श्री माता प्रसाद ने झलकारी बाई की जीवनी की रचना की है। इसके अलावा चोखेलाल वर्मा ने उनके जीवन पर एक वृहद काव्य लिखा है और भवानी शंकर विशारद ने उनके जीवन परिचय को लिपिबद्ध किया है। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने झलकारी की बहादुरी को निम्न प्रकार पंक्तिबद्ध किया है -

जाकर रण में ललकारी थी,
वह तो झाँसी की झलकारी थी,
गोरों से लड़ना सीखा गई है,
इतिहास में झलकारी वह भारत की ही नारी थी।

झाँसी का किला

बिरसा मुंडा

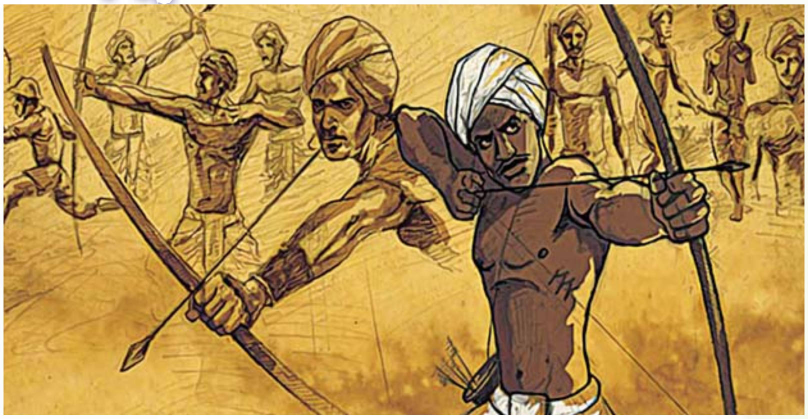

श्रीनिवास सिन्हा

बिरसा मुंडा का जन्म 15 नवम्बर 1875 को रांची जिले के उलिहतु गाँव में हुआ था। मुंडा रीती रिवाज के अनुसार उनका नाम बृहस्पतिवार के हिसाब से बिरसा रखा गया था। बिरसा के पिता का नाम सुगना मुंडा और माता का नाम करमी हटू था। उनका परिवार रोजगार की तलाश में उनके जन्म के बाद उलिहतु से कुरुमब्दा आकर बस गया जहाँ वे खेतों में काम करके अपना जीवन चलाते थे। फिर काम की तलाश में उनका परिवार बम्बा चला गया।

बिरसा मुंडा का परिवार वैसे तो घुमक्कड़ जीवन व्यतीत करता था लेकिन उनका अधिकांश बचपन चल्कड़ में बीता था। बिरसा बचपन से अपने दोस्तों के साथ रेत में खेलते रहते थे और थोड़ा बड़ा होने पर उन्हें जंगल में भेड़ चराने जाना पड़ता था। जंगल में भेड़ चराते वक्त समय व्यतीत करने के लिए बाँसुरी बजाया करते थे और कुछ दिनों बाद बाँसुरी बजाने में उस्ताद हो गये थे। उन्होंने कद्दू से एक एक तार वाला वादक यंत्र तुइला बनाया था जिसे भी वे बजाया करते थे। उनके जीवन के कुछ रोमांचक पल अखारा गाँव में बीते थे। गरीबी के इस दौर में बिरसा मुंडा को उनके मामा के गाँव अयुभातु भेज दिया गया। अयुभातु में बिरसा दो साल तक रहे और वहाँ के स्कूल में पढ़ने लगे थे। बिरसा पढ़ाई में बहुत होशियार थे इसलिए स्कूल चलाने वाले जयपाल नाग ने उन्हें जर्मन मिशन् स्कूल में दाखिला लेने के लिए कहा। उस समय क्रिश्चन स्कूल में प्रवेश लेने के लिए इसाई धर्म अपनाना जरूरी हुआ करता था इसलिए बिरसा ने धर्म परिवर्तन कर अपना नाम बिरसा डेविड रख दिया जो बाद में बिरसा दाउद हो गया था। कुछ वर्षों तक पढ़ाई करने के बाद उन्होंने जर्मन मिशन् स्कूल छोड़ दिया। अब स्कूल छोड़ने के बाद वह वैष्णो भक्त आनन्द पांडे के प्रभाव में आये और उन्होंने हिन्दू धर्म की शिक्षा ली। उन्होंने रामायण, महाभारत और अन्य हिन्दू महाकाव्य पढ़े।

हिन्दुस्तान की धरती पर समय-समय पर महान और साहसी लोगों ने जन्म लिया हैं। भारतभूमि पर ऐसे कई क्रान्तिकारियों ने जन्म लिया है जिन्होंने अपने बल पर अँग्रेजी हुकूमत के दाँत खट्टे कर दिए थे। ऐसे ही एक वीर का नाम था बिरसा मुंडा। पहले बिहार, और अब झारखण्ड की धरती पर बिरसा मुंडा को भगवान का दर्जा अगर दिया जाता है तो उसके पीछे एक बहुत बड़ी वजह भी है। मात्र 25 साल की उम्र में उन्होंने लोगों को एकत्रित कर एक ऐसे आंदोलन का संचालन किया जिसने देश की स्वतंत्रता में अहम योगदान दिया। जनजाति समाज में एकता लाकर उन्होंने देश में धर्मांतरण को रोका और दमन के खिलाफ आवाज उठाई।

समाज के परंपरागत प्रकृति निर्भर तत्व ने आर्थिक समाजवाद की अवधारणा को बिरसा के अंदर जागृत किया। गाँधी से पहले गाँधी की अवधारणा तत्व के उभार के पीछे भी बिरसा का समाज एवं पड़ोस के सूक्ष्म अवलोकन एवं नयी अंतर्दृष्टि थी। उन्होंने गाँधी के समान समस्याओं को देखा-सुना और चिंतन-मनन किया। उनका मुंडा समाज को पुनर्गठित करने का प्रयास अंग्रेजी हुकूमत के लिए विकराल चुनौती बना। उन्होंने नए बिरसाइत धर्म की स्थापना किया तथा लोगों को नई सोच दी, जिसका आधार सात्विकता, आध्यात्मिकता, परस्पर सहयोग, एकता व

बंधुता था। उन्होंने “गोरो वापस जाओ” का नारा दिया एवं परंपरागत लोकतंत्र की स्थापना पर बल दिया, ताकि साम्यवाद की स्थापना हो सके। उन्होंने कहा था - “महारानी राज जाएगा एवं अबुआ राज आएगा”।

पहले यह बिहार का हिस्सा हुआ करता था पर अब यह क्षेत्र झारखंड में आ गया है। साल्गा गांव में प्रारंभिक पढ़ाई के बाद वे चाईबासा इंग्लिश मिडिल स्कूल में पढ़ने गए। बिरसा मुंडा को अपनी भूमि, संस्कृति से गहरा लगाव था। जब वह स्कूल में पढ़ते रहे तब मुण्डाओं/मुंडा सरदारों की छिनी गई भूमि पर उन्हें दुःख था। बिरसा मुण्डा जनजातियों के भूमि आंदोलन के समर्थक थे वह वाद-विवाद में हमेशा प्रखरता के साथ जनजातियों की जल, जंगल और जमीन पर हक की वकालत करते थे। उन्हीं दिनों एक पादरी डॉ. नोट्रेट लोगों को लालच दिया कि अगर वह ईसाई बनें और उसके अनुदेशों का पालन करते रहें तो वे मुंडा सरदारों की छिनी हुई भूमि वापस करा देंगे। सन् 1886-87 में मुंडा सरदारों ने जब भूमि वापसी का आंदोलन किया तो इस आंदोलन को न केवल दबा दिया गया बल्कि ईसाई मिशनरियों द्वारा इसकी भर्त्सना की गई जिससे बिरसा मुंडा को गहरा आघात लगा। उनकी बगावत को देखते हुए उन्हें विद्यालय से निकाल दिया गया, फलतः 1890 में बिरसा तथा उसके पिता चाईबासा से वापस आ गए। यही वह दौर था जिसने बिरसा मुंडा के अंदर बदले और स्वाभिमान की ज्वाला पैदा कर दी। बिरसा मुंडा पर संथाल विद्रोह, चुआर आंदोलन, कोल विद्रोह का भी व्यापक प्रभाव पड़ा। अपनी जाति की दुर्दशा, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक अस्मिता को खतरे में देख उनके मन में क्रांति की भावना उठी। उन्होंने मन ही मन यह संकल्प लिया कि मुंडाओं का शासन् वापस लाएंगे तथा अपने लोगों में जागृति पैदा करेंगे।

बिरसा मुंडा ने न केवल राजनीतिक जागृति के बारे में संकल्प लिया बल्कि अपने लोगों में सामाजिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक जागृति पैदा करने का भी संकल्प लिया। बिरसा ने गाँव-गाँव घूमकर लोगों को अपना संकल्प बताया। उन्होंने अबुआ दिशोम रे अबुआः राज (हमार देश में हमार शासन) का बिगुल फूंका। सन् 1857 के गदर के बाद सरदार आंदोलन संगठित जन आंदोलन के रूप में शुरू हो गया तथा वर्ष 1858 से भूमि आंदोलन के रूप में विकसित यह आंदोलन सन् 1890 में तब राजनीतिक आंदोलन में तब्दील हो गया। इसका नेतृत्व बिरसा मुंडा ने किया। बिरसा के लोकप्रिय व्यक्तित्व के कारण सरदार आंदोलन में नई जान आ गई। अगस्त 1895 में वन संबंधी बकाये की माफी का आंदोलन चला। उसका नेतृत्व भी बिरसा ने किया। जब अँग्रेजी हुकूमत ने मांगों को ठूकरा दिया तब बिरसा ने भी ऐलान कर दिया कि सरकार खत्म हो गई। अब जंगल जमीन पर जनजातियों का राज होगा। 9 अगस्त 1895 को चलकद में पहली बार बिरसा को गिरफ्तार किया गया, लेकिन उनके अनुयायियों ने उन्हें छुड़ा लिया। उनकी गतिविधियाँ अँग्रेज सरकार को रास नहीं आईं। बिरसा और उनके शिष्यों ने क्षेत्र की अकाल पीड़ित जनता की सहायता करने की जिम्मेदारी ले लिया था इसके कारण अपने जीवन काल में ही उन्हें एक महापुरुष का दर्जा मिला। उस इलाके के लोग उनको “धरती बाबा” के नाम से पुकारा और पूजा करते थे। उनके प्रभाव की वृद्धि के बाद पूरे इलाके के मुंडाओं में संगठित होने की चेतना जागृत हुई।

बिरसा के इस प्रकार लोगों को संगठित करने, अँग्रेज हुकूमत के खिलाफ भड़काने के कारण बौखलाई अँग्रेजी हुकूमत ने कई प्रयत्नों के बाद 24 अगस्त 1895 को रात के अंधेरे में उन्हें गिरफ्तार कर लिया। उन पर ब्रिटिश हुकूमत के खिलाफ विद्रोह उकसाने का आरोप लगाया गया। मुंडा और कोल समाज ने बिरसाइयों के नेतृत्व में सरकार के साथ असहयोग करने का ऐलान कर दिया। विरोध के तेवर में फर्क नहीं पड़ने के कारण मुकदमें की कार्रवाई रोककर उन्हें तुरंत जेल भेज दिया गया तथा उन्हें दो साल सश्रम कारावास की सजा सुनाई गई। सन् 1897 में झारखंड में भीषण अकाल के साथ चेचक की महामारी भी फैली। 30 नवम्बर 1897 को बिरसा जेल से छूटे तथा लौटकर अकाल तथा महामारी से पीड़ित लोगों की सेवा में जुट गए। उनका यह कदम अपने अनुयायियों को संगठित करने का आधार बना। फरवरी 1898 में डोम्बारी पहाड़ी पर मुंडारी क्षेत्र से आये मुंडाओं की सभा में उन्होंने आंदोलन की नई नीति की घोषणा की। सन् 1898 के अंत में यह अभियान रंग लाया और अधिकार हासिल करने, खोए राज्य की प्राप्ति का लक्ष्य, जमीन को मालगुजारी से मुक्त करने तथा जंगल के अधिकार को वापस लेने के लिए व्यापक गोलबंदी शुरु हुई। अनेक स्थानों

पर बैठकें हुई। 24 दिसंबर 1899 को रांची से लेकर सिंहभूम जिला के चधरपुर थाने तक में विद्रोह की आग भड़क उठी। फलस्वरूप सेना और पुलिस की कम्पनी बुलाकर बिरसा की गिरफ्तारी का अभियान तेज़ किया गया। सरकार ने बिरसा की सूचना देने वालों और गिरफ्तारी में मदद देने वालों को 500 रुपये का पुरस्कार देने का ऐलान किया। बिरसा ने आंदोलन की रणनीति बदली, साठ स्थानों पर संगठन के केन्द्र स्थापित किए। डोमबाड़ी पहाड़ी पर बिरसा अपनी जनसभा संबोधित कर रहे थे। वहाँ अँग्रेजो सें संघर्ष हुआ था, जिसमें अनेकों औरतें और बच्चे मारे गए थे। डोमबाड़ी पहाड़ी पर ही मुंडाओं की बैठक में बिरसा द्वारा उलगुलान का ऐलान किया गया। उलगुलान के इस ऐलान के बाद बिरसा के कुछ शिष्यों की गिरफ्तारी भी हुई थी। बिरसा के इस आंदोलन की तुलना सन् 1942 के अगस्त क्रांति के काल से की जा सकती है। बिरसा के नेतृत्व में अफसरों, पुलिस, अँग्रेज सरकार के संरक्षण में पलने वाले जमींदारों और महाजनों को निशाना बनाया गया और गोरिल्ला युद्ध ने हुकूमत की चूलें हिला दीं। आंदोलन को कुचलने के लिए रांची और सिंहभूम को सेना के हवाले कर दिया गया। आंदोलन की रणनीति के तहत उन्होंने अपने आंदोलन का केन्द्र बदल दिया। घने जंगलों में संचालन व प्रशिक्षण के केन्द्र बनाए। सन् 1807 से 1900 के बीच मुंडाओं और अँग्रेज सिपाहियों के बीच युद्ध होते रहे और बिरसा और उसके चाहने वाले लोगों ने अँग्रेजों की नाक में दम कर दिया। 3 फरवरी 1900 को सेंतरा के पश्चिम जंगल में बने शिविर से बिरसा को गिरफ्तार कर उन्हें तत्काल रांची कारागार में बंद कर दिया गया। बिरसा के साथ अन्य 482 आंदोलनकारियों को गिरफ्तार किया गया था। उनके खिलाफ 15 आरोप दर्ज किए गए। शेष अन्य गिरफ्तार लोगों में सिर्फ 98 के खिलाफ आरोप सिद्ध हो पाया। बिरसा के विश्वासी गया मुंडा और उनके पुत्र सानरे मुंडा को फाँसी दी गई। गया मुंडा की पत्नी मांकी दो वर्ष के सश्रम कारावास की सजा दी गई। मुकदमें की सुनवाई के शुरूआती दौरे में उन्होंने जेल में भोजन करने के प्रति अनिच्छा जाहिर की। अदालत में तबियत खराब होने की वजह से जेल वापस भेज दिया गया। 01 जून को जेल अस्पताल के चिकित्सक ने सूचना दी कि बिरसा को हैजा हो गया है और उनके जीवित रहने की संभावना नहीं है। 9 जून 1900 की सुबह सूचना दी गईं कि बिरसा अब इस दुनिया में नहीं रहे। इस तरह एक क्रांतिकारी जीवन का अंत हो गया। बिरसा के संघर्ष के परिणाम स्वरूप छोटा नागपुर काश्तकारी अधिनियम 1908 बना। जल, जंगल और जमीन पर पारंपारिक अधिकार की रक्षा के लिए शुरू हुए आंदोलन एक के बाद एक श्रृंखला में गतिमान रहे। आजादी के बाद औद्योगिकीकरण के दौरे ने उस सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था को ध्वस्त कर दिया जिसकी स्थापना के लिए बिरसा का उलगुलान था।

भारतीय संसद में आदिवासी नेता बिरसा मुंडा का चित्र टंगा हुआ है।

बिरसा की मौत से देश ने एक महान क्रांतिकारी को खो दिया जिसने अपने दम पर जनजाति समाज को इकट्ठा किया था। बिरसा मुंडा की गणना महान देशभक्तों में की जाती है। उन्होंने जनजातियों को एकजुट कर उन्हें अँग्रेजी शासन् के खिलाफ संघर्ष करने के लिए तैयार किया। इसके अतिरिक्त उन्होंने भारतीय संस्कृति की रक्षा करने के लिए धर्मान्तरण करने वाले ईसाई मिशनरियों का विरोध किया। ईसाई धर्म स्वीकार करने वाले हिन्दुओं को उन्होंने अपनी सभ्यता एवं संस्कृति की जानकारी दी और अँग्रेजों के षडयन्त्र के प्रति सचेत किया। अपने पच्चीस साल के छोटे जीवन काल में ही उन्होंने जो क्रांति पैदा की वह अतुलनीय है। बिरसा मुंडा धर्मान्तरण, शोषण और अन्याय के विरूद्ध सशस्त्र क्रांति का संचालन करने वाले महान सेनानायक थे। बिरसा मुंडा के इस बलिदान को जनजातियों द्वारा तथा देश के इतिहास में कभी भी भुलाया नहीं जा सकता है। उनके द्वारा धार्मिक, सांस्कृतिक तथा सामाजिक जागृति स्थापित करने के लिए शुरू किए गए अभूतपूर्व अभियान को एक परिणाम तक पँहुचाना ही उनके लिए एक सच्ची श्रद्धांजलि होगी।

तात्या टोपे

योगीराज पोतनीस

तात्या टोपे भारत के प्रथम स्वाधीनता संग्राम के एक प्रमुख सेनानायक थे। सन् 1857 के महान विद्रोह में उनकी भूमिका सबसे महत्त्वपूर्ण, प्रेरणादायक और बेजोड़ थी। सन् सत्तावन के विद्रोह की शुरुवात 10 मई को मेरठ से हुई थी। जल्दी ही क्रांति की चिंगारी समूचे उत्तर भारत में फैल गयी। विदेशी सत्ता का खूनी पंजा तोड़ने के लिए भारतीय जनता ने जबरदस्त संघर्ष किया। उसने अपने खून से त्याग और बलिदान की अमर गाथा लिखी। उस रक्तरंजित और गौरवशाली इतिहास के मंच से झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई, नाना साहब पेशवा, राव साहब, बहादुरशाह जफर आदि के विदा हो जाने के करीब एक साल तक तात्या टोपे विद्रोहियों की कमान संभाले रहे।

जीवन परिचय

तात्या टोपे का जन्म महाराष्ट्र में नासिक के निकट पटौदा के येवला नामक गाँव में एक देशस्थ ब्राहमण परिवार में हुआ था। उनके पिता पाण्डुरंग राव भट्ट पेशवा बाजीराव द्वितीय के घरेलू कर्मचारियों में से थे। बाजीराव के प्रति स्वामिभक्त होने के कारण वे बाजीराव के साथ सन् 1918 में बिठूर चले गये थे क्योंकि अंग्रेजों ने बाजीराव के पूना स्थित आवास पर कब्जा कर लिया था। तात्या टोपे का वास्तविक नाम रामचंद्र पाण्डुरंग राव था। लोग स्नेह से उन्हें तात्या के नाम से पुकारते थे। तात्या का जन्म सन् 1814 में माना जाता है। वह अपने आठ भाई-बहनों में सबसे बड़े थे।

कुछ समय तक तात्या टोपे ने ईस्ट इंडिया में बंगाल आर्मी की तोपखाना रेजीमेंट में भी काम किया था। परन्तु स्वतंत्र चेता और स्वाभिमानी तात्या के लिए अंग्रेजों की नौकरी असह्य थी। इसलिए बहुत जल्दी उन्होंने उस नौकरी से छुटकारा पा लिया और बाजीराव की नौकरी में वापस आ गये। कहते हैं तोपखाने में नौकरी के कारण ही उनके नाम के साथ टोपे जुड़ गया, परंतु कुछ लोग इस संबंध में एक अलग किस्सा बतलाते हैं। कहा जाता है कि बाजीराव ने तात्या को एक बेशकीमती और नायाब टोपी दी थी। तात्या इस टोपे को बड़े चाव से पहनते थे। अतः बड़े ठाट-बाट से वह टोपी पहनने के कारण लोग उन्हें तात्या टोपी या तात्या टोपे के नाम से पुकारने लगे। वह आजन्म अविवाहित रहे।

1857 के विद्रोह में भूमिका

सन् 1857 के विद्रोह की लपटें जब कानपुर पहुँचीं और वहाँ के सैनिकों ने नाना साहब को पेशवा और अपना नेता घोषित किया तो तात्या टोपे ने कानपुर में स्वाधीनता स्थापित करने में अगुवाई की। तात्या टोपे को नाना साहब ने अपना सैनिक सलाहकार नियुक्त किया। जब ब्रिगेडियर जनरल हैवलॉक की कमान में अंग्रेज सेना ने इलाहाबाद की ओर से कानपुर पर हमला किया तब तात्या ने कानपुर की सुरक्षा में अपना जी-जान लगा दिया, परंतु 16 जुलाई, 1857 को उसकी पराजय हो गयी और उसे कानपुर छोड़ देना पड़ा। शीघ्र ही तात्या टोपे ने अपनी सेना का पुनर्गठन किया और कानपुर से बारह मील उत्तर में बिठूर पहुँच गये। यहाँ से कानपुर पर हमले का मौका खोजने लगे। इस बीच हैवलॉक ने अचानक ही बिठूर पर आक्रमण कर दिया। यद्यपि तात्या बिठूर की लड़ाई में पराजित हो गये परंतु उनकी कमान में भारतीय सैनिकों ने इतनी बहादुरी प्रदर्शित किया कि अंग्रेज सेनापति को भी प्रशंसा करनी पड़ी। तात्या एक कुशल सेनापति थे। पराजय से विचलित न होते हुए वे बिठूर से राव साहेब सिंधिया के इलाके में पहुँचे। वहाँ वे ग्वालियर कन्टिजेन्ट नाम की प्रसिद्ध सैनिक टुकड़ी को अपनी ओर मिलाने में सफल हो गये। वहाँ से वह एक बड़ी सेना के साथ काल्पी पहुँचे। नवंबर 1887 में उन्होंने कानपुर पर आक्रमण किया। मेजर जनरल विन्ढल के कमान में कानपुर की सुरक्षा के लिए स्थित अंग्रेज सेना तितर-बितर होकर भागने लगी, परंतु यह जीत थोड़े समय के लिए ही थी। ब्रिटिश सेना के प्रधान सेनापति

सर कॉलिन कैम्पबेल ने तात्या को छह दिसंबर को पराजित कर दिया। इसलिए तात्या टोपे खीरी चले गये और वहाँ नगर पर कब्जा कर लिया। खीरी में उन्होंने अनेक तोपें और तीन लाख रुपये प्राप्त किए जो सेना के लिए जरुरी थे। इसी बीच 22 मार्च को सर ह्यूरोज ने झाँसी का घेराव कर दिया ऐसे नाजुक समय में तात्या टोपे करीब 20,000 सैनिकों के साथ रानी लक्ष्मीबाई की मदद के लिए पहुँचे। ब्रिटिश सेना तात्या टोपे और रानी की सेना से घिर गयी। अंततः रानी की विजय हुई। रानी और तात्या टोपे इसके बाद काल्पी पहुंचे। काल्पी युद्ध में तात्या टोपे को एक बार फिर ह्यूरोज के खिलाफ हार का मुंह देखना पड़ा। कानपुर चरखारी, झाँसी और कोंच की लड़ाइयों की कमान तात्या टोपे के हाथ में थी। चरखारी को छोड़कर दुर्भाग्य से अन्य स्थानों पर उनकी पराजय हो गयी। तात्या टोपे अत्यंत योग्य सेनापति थे। कोंच की पराजय के बाद उन्हें यह समझते देर न लगी कि यदि कोई नया और जोरदार कदम नहीं उठाया गया तो स्वाधीनता सेनानियों की पराजय हो जायेगी। इसलिए तात्या ने काल्पी की सुरक्षा का भार झाँसी की रानी और अपने अन्य सहयोगियों पर छोड़ दिया और वे स्वयं वेश बदलकर ग्वालियर चले गये। जब ह्यूरोज काल्पी की विजय का जश्न मना रहा था, तब तात्या ने एक ऐसी विलक्षण सफलता प्राप्त की जिससे ह्यूरोज अचंभे में पड़ गया। तात्या का जवाबी हमला अविश्वसनीय था। उसने महाराज जयाची राव सिंधिया की फौज को अपनी ओर मिला लिया था और ग्वालियर के प्रसिद्ध किले पर कब्जा कर लिया था। झाँसी की रानी, तात्या और राव साहब ने जीत के ढंके बजाते हुए ग्वालियर में प्रवेश किया और नाना साहब को पेशवा घोषित किया। इस रोमांचकारी सफलता ने स्वाधीनता सेनानियों के दिलों को खुशी से भर दिया, परंतु इसके पहले कि तात्या टोपे अपनी शक्ति को संगठित करते, ह्यूरोज ने आक्रमण कर दिया। फूलबाग के पास हुए युद्ध में रानी लक्ष्मीबाई 18 जून 1858 को शहीद हो गयीं। इसके बाद तात्या टोपे का दस माह का जीवन अद्‌वितीय शौर्य गाथा से भरा जीवन है। लगभग सब स्थानों पर विद्रोह कुचला जा चुका था, लेकिन तात्या ने एक साल की लम्बी अवधि तक मुट्‌ठी भर सैनिकों के साथ अंग्रेज सेना को रोके रखा। इस दौरान उन्होंने दुश्मन के खिलाफ एक ऐसे जबरदस्त छापेमार युद्ध का संचालन किया, जिसने उन्हें दुनिया के छापामार योद्धाओं की पहली पंक्ति में लाकर खड़ा कर दिया। इस छापामार युद्ध के दौरान तात्या टोपे नें दुर्गम पहाड़ियों और घाटियों में बरसात से उफनती नदियों और भयानक जंगलों को पार कर मध्यप्रदेश और राजस्थान में ऐसी लम्बी दौड लगाई जिससे अंग्रेजी कैम्प में तहलका मच गया। बार-बार उन्हें चारों ओर से घेरने का प्रयास किया गया और बार-बार तात्या को लड़ाइयाँ लड़नी पड़ी, परंतु यह छापामार योद्धा एक विलक्षण सूझ-बूझ से अंग्रेजों के घेरों और जालों के परे निकल गया। तत्कालीन अंग्रेज लेखक सिलवेस्टर ने लिखा है कि "हजारों बार तात्या टोपे का पीछा किया गया और चालीस-चालीस मील तक एक दिन में घोड़ों को दौड़ाया गया, परंतु तात्या टोपे को पकड़ने में कभी सफलता नहीं मिली।" ग्वालियर से निकलने के बाद तात्या ने चम्बल नदी पार किया और राजस्थान में टोंक, बूँदी और भीलवाडा गये। उनका इरादा पहले जयपुर और उदयपुर पर कब्जा करना था, लेकिन मेजर जनरल राबर्ट्‌स वहाँ पहले से ही पहुँच गया था। इसके कारण तात्या टोपे को वापस लौटना पड़ा। फिर उन्होंने उदयपुर पर अधिकार करने का विचार किया। परंतु मेजर जनरल राबर्ट्‌स ने उनकी घेराबंदी कर दिया। राबर्ट्‌स ने लेफ्टीनेंट कर्नल होम्स को तात्या का पीछा करने के लिए भेजा, उसने तात्या का रास्ता रोकने की पूरी तैयारी कर रखी थी, परंतु ऐसा नहीं हो सका। भीलवाडा से आगे कंकरोली में तात्या की अंग्रेजी सेना से जबर्दस्त मुठभेड़ हुई जिसमें वह परास्त हो गये। कंकरोली की पराजय के बाद तात्या पूर्व की ओर भागे, ताकि चम्बल नदी पार कर सकें। अगस्त का महीना था। चम्बल नदी तेजी से बढ़ रही थी। तात्या को जोखिम उठाने में आनंद आता था। अंग्रेज उनका पीछा कर रहे थे, इसलिए उन्होंने बाढ में ही चम्बल पार कर ली और झालावाड की राजधानी झालार पाटन पहुँचे। झालावाड़ का शासक अंग्रेजों का समर्थक था, इसलिए तात्या ने अंग्रेजी सेना के आने से पहले राजा से लांखों रुपये वसूल किए और 30 तोपों पर कब्जा कर लिया। यहाँ से उनका इरादा इंदौर पहुँचकर वहाँ के स्वाधीनता सेनानियों को अपने पक्ष में करके फिर दक्षिण पहुँचना था। तात्या को भरोसा था कि यदि नर्मदा पार करके महाराष्ट्र पहुँचना संभव हो जाय तो स्वाधीनता संग्राम को न केवल जारी रखा जा सकेगा, बल्कि अंग्रेजों को भारत से खदेड़ा भी जा सकेगा। सितंबर, 1858 के आरम्भ में तात्या ने गजगड़ की ओर रुख किया। वहाँ से उनकी योजना इंदौर पहुंचने की थी, परंतु इसके पहले कि तात्या इंदौर के लिए रवाना होते अंग्रेजी फौज ने मेजर जान माइकल की कमान ने राजगढ के निकट तात्या की सेना को घेर लिया। माइकल की फौजें थकी हुई थीं इसलिए उसने सुबह हमला करने का विचार किया, परंतु दूसरे दिन सुबह उसे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि तात्या की सेना उसके जाल से निकल भागी है। तात्या ने ब्यावरा पहुँचकर मोर्चाबंदी कर रखी थी। यहाँ अंग्रेजों ने पैदल, घुड़सवार और तोपखाना दस्तों को लेकर एक साथ आक्रमण किया। यह युद्ध भी तात्या हार गये। उनकी 27 तोपें अंग्रेजों के हाथ लगीं। तात्या पूर्व में बेतवा घाटी की ओर चले गये। सिरोंज में तात्या ने चार तोपों पर कब्जा कर लिया और एक सप्ताह विश्राम किया। सिरोंज से वह उत्तर में ईशागढ़ पहुँचे और कस्बे को लूटकर पाँच और तोपों पर कब्जा किया। ईशागढ़ से तात्या की सेना दो भागों में बँट

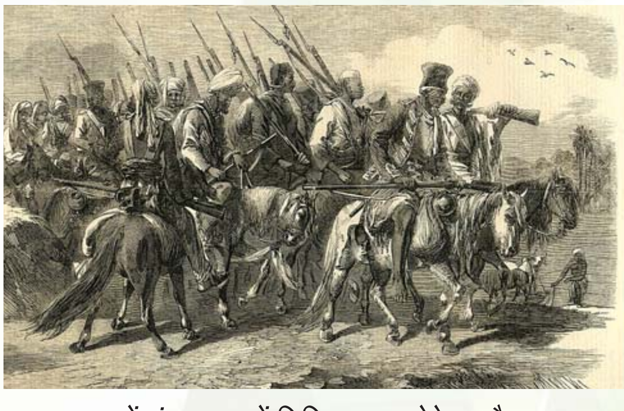

1858 में लंदन न्यूज में चित्रित तात्या टोपे का सैन्य दल

गयी। एक टुकड़ी राव साहब की कमान में ललितपुर चली गयी और दूसरी तात्या की कमान में चंदेरी पहूँची। तात्या का विश्वास था कि चंदेरी में सिंधिया की सेना उसके साथ हो जाएगी, परंतु ऐसा नही हुआ। इसलिए वे 20 मील दक्षिण में, मगावली चले गये। वहाँ माइकल ने उनका पीछा किया और 10 अक्टूबर को उनको पराजित किया। अब तात्या ने बेतवा के उस पार की और ललितपुर चले गये जहाँ राव साहब भी मौजूद थे। उन दोनों का इरादा बेतवा के पार जाने का था परंतु नदी के दूसरे तट पर अंग्रेज सेना रास्ता रोके खड़ी थी। चारों ओर से घिरा देखकर तात्या ने नर्मदा पार करने का विचार किया। इस मंसुबे को पूरा करने के लिए वे सागर जिले में खुरई पहुचे, जहाँ माइकल ने उनकी सेना के पिछले दस्ते को परास्त कर दिया। इसलिए तात्या ने होशंगाबाद और नरसिंहपुर के बीच, फतेहपुर के निकट सरैया घाट पर नर्मदा पार की। तात्या ने अक्टूबर 1858 के अंत में करीब सैनिकों के साथ नर्मदा पार किया था। नर्मदा पार करने के बहुत पहले ही तात्या के पहुँचने का संकेत मिल चुका था। 28 अक्टूबर को इटावा गाँव के कोटवार ने छिंदवाडा से 10 मील दूर स्थित असरे थाने में एक महत्त्वपूर्ण सूचना दी थी। उसने सूचित किया था कि एक भगवा झंडा, सुपारी और पान का पत्ता गाँव-गाँव घुमाया जा रहा है। इनका उद्देश्य जनता को जागृत करना था। उनसे संकेत भी मिलता था कि नाना साहब या तात्या टोपे उस दिशा में पहुँच रहे हैं। अंग्रेजों ने तत्काल कदम उठाए। नागपुर के डिप्टी कमिश्नर ने पड़ोसी जिलों के डिप्टी कमिश्नरों को स्थिति का सामना करने के लिए सचेत किया। इस सूचना को इतना महत्त्वपूर्ण माना गया कि इसकी जानकारी गवर्नर जनरल को दी गयी। नर्मदा पार करके और उसके दक्षिणी क्षेत्र में प्रवेश करके तात्या ने अंग्रेजों के दिलों में दहशत पैदा कर दिया। तात्या इसी मौके की तलाश में थे और अंग्रेज भी उनकी इस योजना का विफल करने के लिए समूचे केन्द्रीय भारत में मोर्चाबंदी किये हुए थे। इस परिप्रेक्ष्य में तात्या टोपे की सफलता को निश्चय ही आश्चर्यजनक माना जायेगा। नागपुर क्षेत्र में तात्या के पहुँचने से बंम्बई प्रांत का गर्वनर एलफिन्स्टन घबरा गया। मद्रास प्रांत में भी घबराहट फैल गई। तात्या अपनी सेना के साथ पंचमढी की दुर्गम पहाड़ियों को पार करते हुए छिंदवाडा के 26 मील उत्तर-पश्चिम में जमई गाँव पहुँच गये। वहाँ थाने के 17 सिपाही मारे गये। वहाँ से तात्या बोरदेह होते हुए सात नवंबर को मुलताई पहुँचे गए। दोनों स्थान मध्यप्रदेश के बैतूल जिले में हैं। मुलताई में तात्या ने एक दिन विश्राम किया। उन्होंने ताप्ती नदी में स्नान किया और ब्राहमणों को एक-एक अशर्फी दान की। बाद में अंग्रेजो ने ये अशर्फियाँ जब्त कर ली। मुलताई के देशमुख और देशपाण्डे परिवारों के प्रमुख और अनेक ग्रामीण उसकी सेना में शामिल हो गये। परंतु तात्या को यहाँ जन समर्थन प्राप्त करने में वह सफलता नहीं मिली जिसकी उन्होंने अपेक्षा की थी। अंग्रेजों ने बैतूल में उनकी मजबूत घेराबंदी कर लिया था। पश्चिम या दक्षिण की ओर बढने के रास्ते बंद थे। अंततः तात्या ने मुलताई को लूट लिया और सरकारी इमारतों में आग लगा दी। वे उत्तर-पश्चिम दिशा की ओर मुड़ गये और आठनेर और भैंउदेही होते हुए पूर्व निमाड़ यानि खण्डवा जिले पहूँच गये। ताप्ती घाटी में सतपुडा की चोटियाँ पार करते हुए तात्या खण्डवा पहुँचे। उन्होंने देखा कि अंग्रेजों ने हर एक दिशा में उनके विरुद्ध मोर्चा बाँध दिया है। खानदेश में सर ह्यूरोज और गुजरात में जनरल राबर्ट्स उनका रास्ता रोके थे। बरार की ओर भी फौज उनकी तरफ बढ रही थी। तात्या के एक सहयोगी ने लिखा है कि तात्या उस समय अत्यंत कठिन स्थिति का सामना कर रहे थे। उनके पास न गोला-बारुद था, न रसद, न पैसा। उन्होंने अपने सहयोगियों को आज्ञा दे दी कि वे जहाँ चाहें जा सकते है, परंतु निष्ठावान सहयोगी और अनुयायी ऐसे कठिन समय में अपने नेता का साथ छोड़ने को तैयार नहीं थे। तात्या असीरगढ़ पहुँचना चाहते थे, परंतु असीर पर अँग्रेजों का कड़ा पहरा था। अतः निमाड से बिदा होने के पहले तात्या ने खण्डवा, पिपलोद आदि के पुलिस थानों और सरकारी इमारतों में आग लगा दी। खण्डवा से वह खरगोन होते हुए सेन्ट्रल इण्डिया वापस चले गए। खरगोन में खजिया नायक अपने 4000 अनुयायियों के साथ तात्या टोपे के साथ जा मिला। इनमें भील सरदार और मालसिन् भी शामिल थे। यहाँ राजपुर में सदरलैण्ड के साथ एक घमासान लड़ाई हुई परंतु सदरलैण्ड को चकमा देकर तात्या नर्मदा पार करने में सफल हो गये। भारत की स्वाधीनता के लिए तात्या का संघर्ष जारी था। एक बार फिर दुश्मन के विरुद्ध तात्या की महायात्रा शुरु हुई। खरगोन से छोटा उदय्पुर, बाँसवाडा, जीरापुर, प्रतापगढ़, नाहरगढ़ होते हुए वे इन्दरगढ पहुँचे। इन्दरगढ़ में उन्हें नेपियर, शाबर्स, समरसेट, स्मिथ, माइकेल और हार्नर नामक ब्रिगेडियर और उससे भी ऊँचे सैनिक अधिकारियों ने चारों दिशा से घेर लिया। बचकर निकलने का कोई रास्ता नहीं था, लेकिन तात्या में अपार धीरज और सूझ-बूझ थी। अंग्रेजों के इस कठिन और असंभव घेरे को तोड़कर वे जयपुर की ओर निकल गये। देवास और शिकर में उन्हें अंग्रेजों से पराजित होना पड़ा। अब उन्हें निराश होकर परोन के जंगल में शरण लेने को विवश होना पड़ा। परोन के जंगल में तात्या टोपे के साथ विश्वासघात हुआ। नरवर का राजा मानसिंह अंग्रेजों से मिल गया और उसकी गद्दारी के कारण तात्या 8 अप्रैल, 1859 को सोते हुए पकड़ लिए गये। रणबाँकुरे तात्या को कोई जागते हुए नहीं पकड़ सका। विद्रोह और अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध लड़ने के आरोप में 15 अप्रैल, 1859 को शिव्पुरी में तात्या कोकोर्ट मार्शल किया गया। कोर्ट मार्शल के सब सदस्य अंग्रेज थे। उन्हें मौत की सजा दी गयी। शिवपुरी के किले में उन्हें तीन दिन बंद रखा गया। 18 अप्रैल को शाम पाँच बजे तात्या को अंग्रेज कंपनी की सुरक्षा में बाहर लाया गया और हजारों लोगों की उपस्थिति में कानपुर के खुले मैदान में फाँसी पर लटका दिया गया। कहते हैं तात्या फाँसी के चबूतरे पर दृढ़ कदमों से ऊपर चढे और फाँसी के फंदे में स्वयं अपना गला डाल दिया। इस प्रकार तात्या उत्तरप्रदेश की मिट्टी का अंग बन गये। कर्नन मालेसन् ने सन् 1857 के विद्रोह का इतिहास लिखा है। उन्होंने कहा कि तात्या टोपे चम्बल, नर्मदा और पार्वती की घाटियों के निवासियों के हीरो बन गये हैं। सच यह है कि तात्या सारे भारत के हीरो बन गये हैं। पर्सी क्रास नामक एक अंग्रेज ने लिखा है कि भारतीय विद्रोह में तात्या सबसे प्रखर मस्तिष्क के नेता थे। उनकी तरह कुछ और लोग होते तो अंग्रेजों के हाथ से भारत छीना जा सकता था।

मौलाना मज़हरुल हक़

राकेश कुमार

मौलाना मज़हरुल हक़ - भारतीय इतिहास के एक स्वतंत्रता सेनानी, महान शिक्षाविद, न्यायविद, लेखक, वीर योद्धा थे। वह अग्रणी महान समाज सेवक थे। उन्होंने अपना पूरा जीवन समाज को सुधारने और हिन्दू – मुस्लिम को जोड़ने में लगा दिया। वह दरियादिल इंसान जो गरीबों, असहायो, दलितों के लिए मसीहा थे। अंग्रेजों को कभी-कभी अपनी लेखनी से, कभी अपने विचारों और दलीलों से पीछे हटने को मजबूर किया।

मौलाना मज़हरुल हक़ का जन्म 22 दिसंबर 1866 को पटना जिले के बिहटा बिरपुरा गाँव के बड़े जमींदार परिवार में हुआ था । उनकी प्राथमिक शिक्षा- दीक्षा वही हुई । बाद में 1886 में मैट्रिक पास कर उच्च शिक्षा हेतु कैनिंग कॉलेज लखनऊ में दाखिला लिया, परंतु वहाँ वह खुद को परिवेश अनुसार ढाल नहीं पाये और क़ानून की पढ़ाई के लिए इंग्लैंड चले गए। उन्होंने वहाँ कानून का गहन अध्यन किया। वहाँ अपने अधिकारों को जाना, देश की स्थिति से रु-बरु हुये और वही पर उन्होंने भारत के स्वतंत्रता आंदोलन में भाग लेने का निर्णय ले लिया। उन्हें देश के लोगों की दयनीय स्थिति के बारे में पता चला तो उन्हें बहुत चिंता हुई । देश और अपने लोगों की दुर्दशा ने उन्हें अंदर से झकझोर दिया था। उनका राष्ट्रप्रेम जाग उठा। कानून की पढ़ाई खत्म करने के बाद वह 1891 में भारत लौट आये और पटना में वकालत का अभ्यास शुरू कर दिया। उन्होंने वकालत के साथ-साथ सामाजिक कार्यों की भी शुरुआत की। वह जल्द ही जनता के बीच काफी लोकप्रिय हो गए। उनका सरल व्यक्तित्व और मृदुभाषी वाणी ने आम लोगों के बीच एक आशा की किरण जगाई। जहाँ वह खड़े होते थे वही मंच बन जाता था। उनका प्रत्येक वाक्य प्रेरणा देने का कार्य करता था। आम लोगों के लिए मौलाना साहब एक मसीहा के रूप में आये थे। उन्होंने तन, मन और धन से लोगों की सेवा की। मौलाना जी ने जनता को अपने अधिकारों, एकता, स्वतंत्रता, धर्म-निरपेक्षता के बारे में बताने का बीड़ा उठाया । उन्होंने जन जागरण का कार्य किया। एक अमीर जमींदार के पुत्र होते हुए भी अपने आप को हमेशा दलितों और गरीबों के सामने प्रस्तुत किया। उस समय के अधिकतर जमींदार अंग्रेजों के तलवे चाटते थे तथा चापलूसी करते थे ताकि उनकी जमींदारी बची रहे। मौलाना जी अंग्रेजों के विरोध में खड़ा हो गये। उनके खिलाफ़ झंडे गाड़ दिये। उनके द्वारा बनाये गये नियम और कानून को मानने से इंकार कर दिया।

उन्हें अंग्रेजों की कूटनीति का पता था। वह उनकी प्रत्येक चाल को जानते थे कि जातिवाद और धर्मवाद, अशिक्षा ही भारत के गुलामी की असली वजह है, अगर हिन्दू- मुस्लिम एक हो जाए और साथ -साथ अंग्रेजों के विरोध में खड़े हो जाए तो आज़ादी निश्चित है । मौलाना हिन्दू- मुस्लिम एकता पर दृढ़ विश्वास रखते थे। उनका मानना था कि

“चाहे हम हिन्दू हो या मुसलमान, हम एक ही कश्ती में सवार हैं, हम उबरेंगे तो साथ-साथ, और डूबेंगे भी तो साथ साथ। हमें एक साथ नौका चलाना सीखना होगा।”

“अगर अंग्रेजों को तोड़ना हैं, तो हिन्दू मुस्लिम को आपस में जुड़ना होगा ”

उन्होंने स्पष्ट किया था कि व्यक्ति का रंग रूप धर्म अलग हो सकते हैं परंतु कर्म नही और हमारा सबसे बड़ा कर्म देश की आजादी है। इस कारण अगर आप लोग देश की आज़ादी की चाह रखते हो। अंग्रेजों की गुलामी से मुक्ति चाहते हो तो रंग भेद, धर्मवाद को छोड़कर आपस में जुड़ जाओ। सभी कौम व जाति के लोग अपने को एक समझें। उनका कथन था हमारे धर्म अलग हैं पर राष्ट्र नहीं ।

इसी से प्रेरित होकर उन्होंने लंदन में "अंजुमन इसलामिया" नाम से एक संस्था की स्थापना की थी। इसने विभिन्न धर्म, क्षेत्र और संप्रदायों के भारतीयों को एक छतरी के नीचे लाया। जहाँ से उन्होंने भारत की स्थिति और समस्याओं पर नियमित रूप से विचार विमर्श करना शुरू किया। महात्मा गाँधी से उनकी मुलाक़ात वही हुई थी। वह एक दूसरे के विचारों से काफी प्रभावित थे और गाँधीजी के विचारों ने उन पर गहरा प्रभाव डाला था। गाँधीजी भी जटिल समस्याओं के निवारण हेतु मौलाना साहब के विचारों को वरीयता देते थे तथा उनसे सलाह मशवरा किया करते थे । 1897 में बिहार में पड़े भीषण अकाल ने उन्हें अंदर से झकझोर दिया, ब्रिटिश सरकार ने उन्हें ढंग से राहत नहीं पहुँचायी थी । हजारों की तादाद में लोग भूखे मर रहे थे। चारो ओर लाशों का ढेर नज़र आ रहा था महामारी ने विशाल रूप धारण कर लिया था। उन्होंने राहत कार्यों में बड़ी भूमिका निभाई। फिर धीरे-धीरे अपने आप को पूर्ण रूप से स्वाधीनता आंदोलन में झोंक दिया। 1906 में मौलाना बिहार कांग्रेस कमेटी के उपाध्यक्ष चुने गए। मजरूल हक़ ने बिहार में गृह राज्य आंदोलन का आयोजन करने में मदद की और फिर 1916 में बिहार में होम-रूल मूवमेंट की स्थापना के बाद वो अध्यक्ष बने। अध्यक्ष बनने के उपरांत उन्होंने अपने गृह राज्य के लोगों की मदद करने के लिये उनके समस्याओं को जानने के लिये अनेक जिलो में पंचायतों का आयोजन किया। जहां आम जनता अपनी समस्याओं को परोक्ष रूप से प्रस्तुत कर सकती थी। वह उनकी समस्याओं को लिखित रूप देकर सुलझाने का प्रयास करते थे।

1917 में चंपारण सत्याग्रह में वह प्रत्यक्ष रूप से शामिल रहे उन्होंने डॉ राजेंद्र प्रसाद का प्रत्यक्ष रूप से साथ दिया था, इसके लिए उन्हें तीन महीनो के लिए जेल भी जाना पड़ा । जेल से लौटने के बाद उन्होंने गाँधीजी के साथ मिलकर ब्रिटिश हुकूमत को हिलाने का बीड़ा उठाया। आजादी पाने के उदेश्य से अपनी आवाज़ को बुलंद किया। महात्मा गाँधी ने जब देश में असहयोग और खिलाफत आंदोलन की शुरुआत की तो मौलाना ने अपना वकालत का पेशा और मेंबर ऑफ इंपीरियर लेजिस्लेटिव कौंसिल का प्रतिष्ठित पद भी त्याग दिया। उन्हें पूर्ण स्वतन्त्रता में विश्वास था उनका कहना था की स्वतंत्रता, प्रत्येक राष्ट्र का अधिकार है और इसे कोई नहीं छिन सकता।

1919 में मौलाना ने विदेशी पोशाक का बहिष्कार कर जला दिया और अपने पारंपरिक मुस्लिम पोशाक को धारण कर स्वदेशी आंदोलन की नींव रखी । इस कारण उन्हें "देश भूषण फकीर मज़हरुल हक़" का खिताब दिया गया ।

बिहार के सिवान जिले में मौजूद मौलाना मज़हरुल हक़ का घर "आशियाना" और क़ब्र की तस्वीर

मौलाना ने आंदोलन को आगे बढ़ाने के लिए 1920 में पटना - दानापुर रोड पर सदाकत आश्रम और विद्या पीठ कॉलेज के निर्माण हेतू अपने बाप- दादा की 16 बीघा जमीन दान कर दी ताकि स्वतंत्रता आंदोलन के कारण जो युवा पढ़ाई छोड़ चुके हैं उनकी शिक्षा पूरी हो सके और एक ही परिसर में हिन्दू मुस्लिम बच्चो की शिक्षा-दीक्षा हो सके । एक ही परिसर के भीतर मुसलमानों तथा हिन्दुओं के लिये शिक्षा का व्यवस्था करने के पीछे उनकी सोच सांप्रदायिक सौहाद्र को बढ़ाना था। यह उनके बीच के दूरी को मिटाने का एक प्रयास था जो संभवत सफल रहा। वह हिन्दुओं और मुसलमानों को एक जुट करने में सफल रहे। ये वही सदाकत आश्रम है जहां से मौलाना मज़हरुल हक़, जयप्रकाश नारायण और उनकी तरह हजारों देशभक्तों ने देश की आज़ादी हेतु बीड़ा उठाया था। यही आश्रम राजेंद्र बाबू की कर्मस्थली भी रही, उन्होंने जीवन का अधिकांश समय यही बिताया। उन्हें

पटना विश्वविद्यालय

मौलाना से बहुत लगाव था। मौलाना ने राष्ट्रीय एकता को बढ़ाने और अंग्रेजों के खिलाफ आंदोलन तेज़ करने के लिए 1921 में सदाकत आश्रम में "मदरलैंड" नामक एक साप्ताहिक पत्रिका भी शुरु किया। जिसमें वह आजादी के पक्ष में लिखा करते थे ताकि देश में चल रहे आंदोलनों में होने वाली गतिविधियों को जन-जन तक पहुँचाने में मदद मिल सके। अंग्रेजों से उनकी प्रसिद्धि छिपी नहीं थी वह उन पर तथा उनकी प्रत्येक गतिविधियों पर कड़ी नज़र रख रहे थे। जिसके कारण कई बार उन्हें जेल भी जाना पड़ा । मौलाना साहब निःशुल्क तथा अनिवार्य प्राइमरी शिक्षा लागू कराने के लिए ताउम्र लड़ते रहे।

देश की स्वतंत्रता और समाजिक कार्यों में महिलाओं की भागीदारी करने हेतु उन्होंने पर्दा प्रथा के खिलाफ चेतना जगाने का भी प्रयास किया था । उन्हें पता था कि मुस्लिम और हिन्दू परिवारों के द्वारा चल रही ये परंपरा महिलाओं के विकास में बाधा उत्पन्न करने के साथ-साथ उन्हें पुरुषों के पीछे रहने के लिए मजबूर करती हैं। वह पुरुषवाद की परंपरा के विरोधी थे, और महिलाओं को पुरुषों के समान अधिकार दिलाने हेतु सारी जिंदगी लड़ते रहे। महिलाओं के उत्थान के लिए हमेशा कार्यरत रहे और महिला शिक्षा का भी समर्थन करते रहे। इस कारण कई बार उन्हें सामूहिक वर्ग विशेष से विरोध का सामना करना पड़ा। उन्होंने प्रदेश में बेहतर शिक्षा की व्यवस्था तथा उसके सुधार हेतु बहुत से अनुरोध किये। वह देश में गंगा यमुनी संस्कृति के समर्थक थे।

अपने जीवन के आखरी दिनो में उन्होंने सक्रिय राजनीति से लगभग सन्यास ले लिया था। 2 जनवरी 1930 को वह दुनिया से अलविदा हो गए।

सरकार ने उनकी स्मृति में सन् 1998 में मौलाना मज़रूल हक़ अरबी एंड पर्शियन यूनिवर्सिटी की स्थापना किया। इनके नाम पर पटना में एक सड़क का नामकरण किया गया है। परंतु इनके योगदान के तुलना में ये कुछ भी नहीं हैं। उनका जीवन लोगों के लिये अनुकरणीय है जिसे शब्दों में व्याख्या करना असंभव हैं। वह सच्चा सपूत जिन्होंने देश की आज़ादी का स्वप्न तो देखा पर उसे पूरा होते हुए देख नहीं पाये। आज भारत जब उन जैसे महापुरुषों के बलिदान और योगदान के बदौलत आज़ाद हैं। कुछ महापुरुषों को छोड़ मौलाना मज़हरुल हक़ जैसे न जाने कितने बलिदानियों और सच्चे देशभक्तों की जन्म जयंती मनाना तो दूर उन्हें याद करना भी छोड़ दिया। लोगों को नहीं मालूम कि ऐसे महापुरुष हजारों सालों में एक बार पैदा होते हैं।

ऐसे महान बलिदानी को मेरा शत्-शत् नमन !

लाला हरदयाल

शारल पटेल

लाला हरदयाल भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम के उन अग्रणी क्रान्तिकारियों में थे जिन्होंने विदेश में रहने वाले भारतीयों को देश की आजादी की लड़ाई में योगदान के लिये प्रेरित एवं प्रोत्साहित किया। इसके लिये उन्होंने अमेरिका में जाकर गदर पार्टी की स्थापना की। उन्होंने प्रवासी भारतीयों के बीच प्रचण्ड देशभक्ति की अलख जगायी उसका आवेग उत्तरोतर बढ़ता ही गया। काकोरी काण्ड का ऐतिहासिक फैसला आने के बाद मई, सन् 1927 में लाला हरदयाल को भारत लाने का प्रयास किया गया।

जीवन परिचय

लाला हरदयाल का जन्म 14 अक्टूबर 1884 को दिल्ली में गुरुद्वारा शीशगंज के पीछे चीराखाना मुहल्ले में हुआ। उनकी माता भोली रानी ने तुलसीकृत रामचरितमानस एवं वीर पूजा के पाठ पढ़ा कर उदात्त भावना, शक्ति एवं सौन्दर्य बुद्धि का संचार किया। उर्दू तथा फारसी के पण्डित पिता गौरीदयाल माथुर ने बेटे को विद्याव्यसनी बना दिया। 17 वर्ष की आयु में सुन्दर रानी नाम की अत्यन्त रुपसी कन्या से उनका विवाह हुआ। दो वर्ष बाद उन दोनों को एक पुत्र की प्राप्ति हुई, किन्तु कुछ दिनों बाद ही उसकी मृत्यु हो गयी। सन् 1908 में उनकी दूसरी सन्तान, एक पुत्री पैदा हुई। लाला जी बहुत कम उम्र में ही आर्य समाज से प्रभावित हो चुके थे।

शिक्षा-दीक्षा

लाला हरदयाल की आरम्भिक शिक्षा कैम्ब्रिज मिशन् स्कूल में हुई। इसके बाद सेंट स्टीफेंस कालेज, दिल्ली से संस्कृत में स्नातक किया। तत्पश्चात पंजाब विश्वविद्यालय, लाहौर से संस्कृत में ही एम.ए. किया। इस परीक्षा में उन्हें इतने अंक प्राप्त हुए थे कि सरकार की ओर से 200 पौण्ड की छात्रवृत्ति दी गयी। हरदयाल जी उस छात्रवृति के सहारे आगे पढ़ने के लिये लन्दन चले गये और सन् 1905 में आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में प्रवेश लिया। वहाँ उन्होंने दो छात्रवृतियाँ और प्राप्त की। हरदयाल जी की यह विशेषता थी कि वे एक समय में पाँच कार्य एक साथ कर लेते थे। 12 घंटे का नोटिस देकर इनके सहपाठी मित्र इनसे शेक्सपियर का कोई भी नाटक मुँहज़बानी सुन लिया करते थे। इसके पहले ही वह मास्टर अमीरचन्द्र की गुप्त क्रान्तिकारी संस्था के सदस्य बन चुके थे। उन दिनों लन्दन में श्यामजी कृष्ण वर्मा भी रहते थे जिन्होंने देशभक्ति का प्रचार करने के लिये वहीं इण्डिया हाउस की स्थापना की हुई थी। इतिहास के अध्ययन के परिणामस्वरुप अंग्रेजी शिक्षा पद्धति को पाप समझकर सन् 1907 में "भांड़ में जाये आई.सी.एस." कह कर उन्होंने आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय तत्काल छोड़ दिया और लन्दन में देशभक्त समाज स्थापित कर असहयोग आन्दोलन का प्रचार करने लगे। भारत को स्वतन्त्र करने के लिये लाला जी की यह योजना थी कि जनता में राष्ट्रीय भावना जगाने के पश्चात पहले सरकार की कड़ी आलोचना की जाये फिर युद्ध की तैयारी की जाये, तभी कोई ठोस परिणाम मिल सकता है, अन्यथा नहीं। कुछ दिनों विदेश में रहने के बाद 1908 में वे भारत वापस लौट आये।

यंग मैन इण्डिया एसोसियेशन् की स्थापना

बात उन दिनों की है जब लाहौर में युवाओं के मनोरंजन के लिये एक ही क्लब हुआ करता था जिसका नाम था "यंग मैन क्रिश्चयन एसोसियेशन" या "वाई एम सी ए"। उस समय लाला हरदयाल लाहौर में एम०ए० कर रहे थे। संयोग से उनकी क्लब के सचिव से किसी बात को लेकर तीखी बहस हो गयी। लाला जी ने आव

देखा न ताव, तुरन्त ही वाई एम सी ए के समानान्तर यंग मैन इंडिया एसोसियेशन् की स्थापना कर डाली। लाला जी के क्लब में मोहम्मद अल्लामा इकबाल प्रोफेसर भी थे जो वहाँ दर्शनशास्त्र पढ़ाते थे। उन दोनों के बीच अच्छी मित्रता थी। जब लाला जी ने प्रो. इकबाल से एसोसियेशन् के उद्घाटन समारोह की अध्यक्षता करने को कहा तो वह सहर्ष तैयार हो गये। इस समारोह में इकबाल ने अपनी प्रसिद्ध रचना "सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्ताँ हमारा" तरन्नुम में सुनायी थी। ऐसा शायद पहली बार हुआ कि किसी समारोह के अध्यक्ष ने अपने अध्यक्षीय भाषण के स्थान पर कोई तराना गाया हो। इस छोटी लेकिन जोश भरी रचना का श्रोताओं पर इतना गहरा प्रभाव हुआ कि इकबाल को समारोह के आरम्भ और समापन- दोनों ही अवसरों पर ये गीत सुनाना पड़ा।

भारत आगमन

भारत लौट कर सबसे पहले पूना जाकर वे लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक से मिले। उसके बाद फिर न जाने क्या हुआ कि उन्होंनें पटियाला पहुँच कर बौद्ध धर्म ग्रहण कर लिया। शिष्य-मण्डली के सम्मुख लगातार तीन सप्ताह तक संसार के क्रान्तिकारियों के जीवन का विवेचन किया। तत्पश्चात लाहौर के अंग्रेजी दैनिक पंजाबी का सम्पादन करने लगे। लाला जी के आलस्य-त्याग, अहंकार-शून्यता, सरलता, विद्वत्ता, भाषा पर आाधिपत्य, बुद्धिप्रखरता, राष्ट्रभक्ति का ओज तथा परदु:ख में संवेदनशीलता जैसे असाधारण गुणों के कारण कोई भी व्यक्ति एक बार उनका दर्शन करते ही मुग्ध हो जाता था। वे अपने सभी निजी पत्र हिन्दी में ही लिखते थे किन्तु दक्षिण भारत के भक्तों को सदैव संस्कृत में उत्तर देते थे। लाला जी बहुधा यह बात कहा करते थे - "अंग्रेजी शिक्षा पद्धति से राष्ट्रीय चरित्र तो नष्ट होता ही है, राष्ट्रीय जीवन का स्रोत भी विषाक्त हो जाता है। अंग्रेज ईसाइयत के प्रसार द्वारा हमारे दासत्व को स्थायी बना रहे हैं।"

पुन: विदेश प्रस्थान

1908 में फिर सरकारी दमन चक्र चला। लाला जी के कठोर प्रवचनों के परिणामस्वरुप विद्यार्थी कॉलेज छोड़ने लगे और सरकारी कर्मचारी अपनी नौकरियाँ। सरकार इन्हें गिरफ्तार करने की योजना बनाने में जुट गयी। लाला लाजपत राय के परामर्श को शिरोधार्य कर आप फौरन पेरिस चले गये और वहीं रहकर जेनेवा से निकलने वाली मासिक पत्रिका वन्दे मातरम का सम्पादन करने लगे। गोपाल कृष्ण गोखले जैसे मॉडरेटों की आलोचना अपने लेखों में खुल कर किया करते थे। हुतात्मा मदनलाल ढींगरा के सम्बन्ध में उन्होंने एक लेख में लिखा था - "इस अमर वीर के शब्दों एवं कृत्यों पर शतकों तक विचार किया जायेगाा जो मृत्यु से नव-वधू के समान प्यार करता था।" मदनलाल ढींगरा ने फाँसी से पूर्व कहा था - "मेरे राष्ट्र का अपमान परमात्मा का अपमान है और यह अपमान मैं कभी बर्दाश्त नहीं कर सकता था। अत: मैं जो कुछ कर सकता था वही मैंने किया। मुझे अपने किये पर जरा भी पश्चाताप नहीं है।" लाला हरदयाल ने पेरिस को अपना प्रचार-केंन्द्र बनाना चाहा था किन्तु वहाँ पर इनके रहने खाने का प्रबन्ध प्रवासी भारतीय देशभक्त न कर सके। विवश होकर वे सन् 1910 में पहले अल्जीरिया गये बाद में एकान्तवास हेतु एक अन्य स्थान खोज लिया और लामार्तनीक द्वीप में जाकर महात्मा बुद्ध के समान तप करने लगे। परन्तु वहाँ भी अधिक दिनों तक न रह सके और भाई परमानन्द के अनुरोध पर हिन्दू संस्कृति के प्रचारार्थ अमरीका चले गये। तत्पश्चात होनोलूलू के समुद्र तट पर एक गुफा में रहकर आदि शंकराचार्य, काण्ट, हीगल व कार्ल मार्क्स आदि का अध्ययन करने लगे। भाई परमानन्द के कहने पर इन्होंने कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय में हिन्दू दर्शन पर कई व्याख्यान दिए। अमरीकी बुद्धिजीवी इन्हें हिन्दू सन्त, ऋषि एवं स्वतन्त्रता सेनानी कहा करते थे। सन् 1912 में स्टेनफोर्ड विश्वविद्यालय में हिन्दू दर्शन तथा संस्कृत के ऑनरेरी प्रोफेसर नियुक्त हुए। वहीं रहते हुए इन्होंने गदर पत्रिका निकालनी प्रारम्भ की। पत्रिका ने अपना रँग दिखाना प्रारम्भ ही किया था कि जर्मनी और इंग्लैण्ड में भयंकर युद्ध छिड़ गया। लाला जी ने विदेश में रहनेवाले सिक्खों को स्वदेश लौटने के लिये प्रेरित किया। इसके लिये वह स्थान-स्थान पर जाकर प्रवासी भारतीय सिक्खों में ओजस्वी व्याख्यान दिया करते थे। इनके व्याख्यानों के प्रभाव से ही लगभग दस हजार पंजाबी सिक्ख भारत लौटे। कितने तो रास्ते में गोली से उड़ा दिये गये। जिन्होंने भी विप्लव मचाया वे सूली पर चढ़ा दिये गये। लाला हरदयाल ने अमरीका में और भाई परमानन्द ने भारत में क्रान्ति की अग्नि को प्रचण्ड किया। जिसका परिणाम यह हुआ कि दोनों ही गिरफ्तार कर लिये गये। भाई परमानन्द को पहले फाँसी का दण्ड सुनाया गया बाद में उसे काला पानीकी सजा में बदल दिया गया। परन्तु हरदयाल जी अपने बुद्धि-कौशल्य से अचानक स्विटजरलैण्ड चले गये और जर्मनी के साथ मिल कर भारत को स्वतन्त्र करने के प्रयत्न करने लगे। महायुद्ध के उत्तर भाग में जब जर्मनी हारने लगा तो लाला जी वहाँ से चुपचाप स्वीडन चले गये। उन्होंने वहाँ की भाषा आनन-फानन में सीख ली और स्विस भाषा में ही इतिहास, संगीत, दर्शन आदि पर व्याख्यान देने लगे। उस समय तक वे विश्व की तेरह भाषाएं पूरी तरह सीख चुके थे।

मृत्यु

लाला हरदयालजी को सन् 1927 में भारत लाने के सारे प्रयास जब असफल हो गये तो उन्होंने इंग्लैण्ड में ही रहने का मन बनाया और वहीं रहते हुए डॉ क्रिंटन्स ऑफ बोधिसत्वनामक शोधपूर्ण पुस्तक लिखी

जिस पर उन्हें लंदन विश्वविद्यालय ने पीएच.डी. की उपाधि प्रदान की। बाद में लन्दन से ही उनकी कालजयी कृति हिंट्स फार सेल्फ कल्चर छपी जिसे पढ़कर किसी को भी लगेगा कि लाला हरदयाल की विद्वत्ता अथाह थी। अन्तिम पुस्तक "टुवेलव रिलीजिएन्स एंड मार्डन लाईफ" में उन्होंने मानवता पर विशेष बल दिया। मानवता को अपना धर्म मान कर उन्होंने लन्दन में ही आधुनिक संस्कृति संस्था भी स्थापित की। तत्कालीन ब्रिटिश भारत की सरकार ने उन्हें सन् 1938 में हिन्दुस्तान लौटने की अनुमति दे दी। अनुमति मिलते ही उन्होंने स्वदेश लौटकर जीवन को देशोत्थान में लगाने का निश्चय किया। हिन्दुस्तान के लोग इस बात पर बहस कर रहे थे कि लाला जी स्वदेश आयेंगे भी या नहीं, किन्तु इस देश के दुर्भाग्य से लाला जी के शरीर में स्थित उस महान आत्मा ने फिलाडेल्फिया में 4 मार्च 1938 को अपने उस शरीर को स्वयं ही त्याग दिया। लाला जी जीवित रहते हुए भारत नहीं लौट सके। उनकी अकस्मात मृत्यु ने सभी देशभक्तों को असमंजस में डाल दिया। तरह-तरह की अटकलें लगायी जाने लगीं। परन्तु उनके बचपन के मित्र लाला हनुमन्त सहाय जब तक जीवित रहे बराबर यही कहते रहे कि हरदयाल की मृत्यु स्वाभाविक नहीं थी, उन्हें विष देकर मारा गया।

कृतियाँ

लाला हरदयाल गम्भीर आदर्शवादी, भारतीय स्वतन्त्रता के निर्भीक समर्थक, ओजस्वी वक्ता और लब्धप्रतिष्ठ लेखक थे। वे हिन्दू तथा बौद्ध धर्म के प्रकाण्ड पण्डित थे। उनके जैसा उद्भुत स्मरणशक्ति धारक व्यक्तित्व विश्व में कोई विरला ही हुआ होगा। वे उद्धरण देते समय कभी ग्रन्थ नहीं पलटते थे बल्कि अपनी विलक्षण स्मृति के आधार पर सीधा लिख दिया करते थे कि यह अंश अमुक पुस्तक के अमुक पृष्ठ से लिया गया है। उनके द्वारा लिखित पुस्तकें निम्न हैं-

1. Thoughts on Education
2. युगान्तर सरकुलर
3. राजद्रोही प्रतिबन्धित साहित्य (गदर, ऐलाने-जंग, जंग-दा-हांका)
4. Social Conquest of Hindu Race
5. Writings of Hardayal
6. स्वाधीन विचार
7. लाला हरदयाल जी के स्वाधीन विचार
8. अमृत में विष
9. Hints For Self Culture
10. Twelve Religions & Modern Life
11. Glimpses of World Religions
12. Bodhisatva Doctrines
13. व्यक्तित्व विकास (संघर्ष और सफलता)

ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय

खुदीराम बोस

दत्ता प्रसाद मंत्री

युवा क्रान्तिकारी खुदीराम बोस खुदीराम बोस भारतीय स्वाधीनता के लिये मात्र 19 साल की उम्र में हिन्दुस्तान की आजादी के लिये फाँसी पर चढ़ गये। कुछ इतिहासकारों की यह धारणा है कि वे अपने देश के लिये फाँसी पर चढ़ने वाले सबसे कम उम्र के बहादुर और युवा क्रान्तिकारी देशभक्त थे।

जन्म व प्रारम्भिक जीवन

खुदीराम का जन्म 3 दिसंबर 1889 को पश्चिम बंगाल के मिदनापुर जिले के बहुवैनी नामक गाँव में बाबू त्रैलोक्यनाथ बोस के परिवार में हुआ था। उनकी माता का नाम लक्ष्मीप्रिया देवी था। बालक खुदीराम के मन में देश को आजाद कराने की ऐसी लगन लगी कि नौवीं कक्षा के बाद ही पढ़ाई छोड़ दी और स्वदेशी आन्दोलन में कूद पड़े। छात्र जीवन से ही ऐसी लगन मन में लिये इस नौजवान ने हिन्दुस्तान पर अत्याचारी सत्ता चलाने वाले बिटिश साम्राज्य को ध्वस्त करने के संकल्प में अलौकिक धैर्य का परिचय देते हुए पहला बम फेका और मात्र 18 वर्ष में हाथ में भगवतगीता लेकर हँसते-हँसते फाँसी के फन्दे पर चढ़कर इतिहास रच दिया।

क्रान्ति के क्षेत्र में शामिल

स्कूल छोड़ने के बाद खुदीराम रिवोल्यूशनरी पार्टी के सदस्य बने और वन्दे मातरम पैंफलेट वितरित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। 1905 में बंगाल के विभाजन (बंग-भंग) के विरोध में चलाये गये आन्दोलन में उन्होंने भी बढ़-चढ़कर भाग लिया। फरवरी 1906 में मिदनापुर में एक औद्योगिक तथा कृषि प्रदर्शनी लगी हुई थी। प्रदर्शनी देखने के लिये आसपास के प्रान्तों से सैंकड़ों लोग आने लगे थे। बंगाल के एक क्रांतिकारी सत्येंद्रनाथ द्वारा लिखे सोनार बंगला नामक ज्वलंत पत्रक की प्रतियाँ खुदीरामने इस प्रदर्शनी में बाँटी। एक पुलिस उन्हें पकड़ने के लिये दौड़ा। खुदीराम ने इस सिपाही के मुँह पर घूँसा मारा और शेष पत्रक बगल में दबाकर भाग गये। इस प्रकरण में राजद्रोह के आरोप में सरकार ने उन पर अभियोग चलाया परन्तु गवाही न मिलने से खुदीराम निर्दोष छूट गये।

इतिहासवेता मालती मलिक के अनुसार 28 फरवरी 1906 को खुदीराम बोस गिरफ्तार कर लिये गये लेकिन वह कैद से भाग निकले। लगभग दो महीने बाद अप्रैल में वह फिर से पकड़े गये। 16 मई 1906 को उन्हें रिहा कर दिया गया।

6 दिसंबर 1907 को खुदीराम ने नारायणगढ़ रेलवे स्टेशन् पर बंगाल के गवर्नर की विशेष ट्रेन पर हमला किया परन्तु गवर्नर बच गया। सन् 1908 में उन्होंने दो अंग्रेज अधिकारियों वाटसन् और पैम्फायल्ट फुलर पर बम से हमला किया लेकिन वे भी बच निकले।

न्यायाधीश किंग्जफोर्ड को मारने की योजना

मिदनापुर में युगांतर नाम की क्रांतिकारियों की गुप्त संस्था के माध्यम से खुदीराम क्रांतिकार्य में पहले से ही जुट चुके थे। 1905 में लॉर्ड कर्जन ने जब बंगाल का विभाजन किया तो उसके विरोध में सड़कों पर उतरे अनेकों भारतीयों को उस समय के कलकत्ता के मॅजिस्ट्रेट किंग्जफोर्ड ने क्रूर दण्ड दिया। अन्य मामलों में भी उसने क्रान्तिकारियों को बहुत कष्ट दिया था। इसके परिणामस्वरुप किंग्जफोर्ड को पदोन्नति देकर मुजफ्फरपुर में सत्र न्यायाधीश के पद पर भेजा गया था। युगान्तर समिति की एक गुप्त बैठक में किंग्जफोर्ड को ही मारने का निश्चय किया। इस कार्य हेतु खुदीराम तथा प्रफुल्लकुमार चाकी का चयन किया गया। खुदीराम को एक बम और पिस्तौल दी गयी। प्रफुल्लकुमार को भी एक पिस्तौल दी गयी।

खुदीराम बोस की गिरफ्तारी का चित्र

मुजफ्फरपुर आने पर इन दोनों ने सबसे पहले किंग्जफोर्ड के बँगले की निगरानी की। उन्होंने उसकी बग्घी तथा उसके घोड़े का रंग देख लिया। खुदीराम तो किंग्जफोर्ड को उसके कार्यालय में जाकर ठीक से देख आए थे।

अंग्रेज अत्याचारियों पर बम से हमला

30 अप्रैल 1908 को ये दोनों नियोजित काम के लिये बाहर निकले और किंग्जफोर्ड के बँगले के बाहर घोडागाड़ी से उसके आने की राह देखने लगे। बँगले की निगरानी हेतु वहाँ मौजूद पुलिस के गुप्तचरों ने उन्हें हटाना भी चाहा परन्तु वे दोनों उन्हें संतोषजनक उत्तर देकर वहीं रुके रहे। रात में साढ़े आठ बजे के आसपास क्लब से किंग्जफोर्ड की बग्घी के समान दिखने वाली गाड़ी आते हुए देखकर खुदीराम गाड़ी के पीछे दौड़ने लगे। रास्ते में बहुत ही अँधेरा था। गाड़ी किंग्जफोर्ड के बँगले के सामने आते ही खुदीराम ने अंधेरे में ही आगे वाली बग्घी पर निशाना लगाकर जोर से बम फेंका। हिन्दुस्तान में इस पहले बम विस्फोट की आवाज उस रात तीन मील तक सुनाई दी और कुछ दिनों बाद तो उसकी आवाज इंग्लैंड तथा यूरोप में भी सुनी गयी। वहाँ इस घटना की खबर ने तहलका मचा दिया। यूँ तो खुदीराम ने किंग्जफोर्ड की गाड़ी समझकर बम फेंका था परन्तु उस दिन किंग्जफोर्ड थोड़ी देर से क्लब से बाहर आने के कारण बच गया। गाड़ियाँ एक जैसी होने के कारण दो यूरोपियन स्त्रियों को अपने प्राण गँवाने पड़े। खुदीराम तथा प्रफुल्लकुमार दोनों ही रातों - रात नंगे पैर भागते हुए 24 मील दूर स्थित वैनी रेलवे स्टेशन पर जाकर ही रुके।

अंग्रेज पुलिस उनका पीछा कर रही थी। औरवैनी रेलवे स्टेशन पर उन्हें घेर लिया गया। अपने को पुलिस से घिरा देख प्रफुल्लकुमार चाकी ने खुद को गोली मारकर अपनी शहादत दे दी जबकि खुदीराम पकड़े गये। 11 अगस्त 1908 को उन्हें मुजफ्फरपुर जेल में फाँसी दे दी गयी। उस समय उनकी उम्र मात्र 18 वर्ष कुछ माह थी।

फाँसी का आलिंगन

11 अगस्त 1908 को भगवतगीता हाथ में लेकर खुदीराम धैर्य के साथ खुशी-खुशी फाँसी चढ़ गये। किंग्जफोर्ड ने घबराकर नौकरी छोड़ दी और जिन क्रांतिकारियों को उसने कष्ट दिया था उनके भय से उसकी शीघ्र ही मौत भी हो गयी। फाँसी के बाद खुदीराम इतने लोकप्रिय हो गये कि बंगाल के जुलाहे एक खास किस्म की धोती बुनने लगे। इतिहासवेत्ता शिरोल के अनुसार बंगाल के राष्ट्रवादियों के लिये वह वीर शहीद और अनुकरणीय हो गया। विद्यार्थीयों तथा अन्य लोगों ने शोक मनाया। कई दिन तक स्कूल कालेज सभी बन्द रहे और नौजवान ऐसी धोती पहनने लगे, जिनकी किनारी पर खुदीराम लिखा होता था।

स्मारक का उद्घाटन

क्रान्तिवीर खुदीराम बोस का स्मारक बनाने की योजना कानपुर के युवकों ने बनाई और उनके पीछे असंख्य युवक इस स्वतन्त्रता-यज्ञ में आत्मार्पण करने के लिये आगे आये। इस प्रकार के अनेक क्रान्तिकारियों के त्याग की कोई सीमा नहीं थी।

लोकप्रियता

मुजफ्फरपुर जेल में जिस मजिस्ट्रेट ने उन्हें फाँसी पर लटकाने का आदेश सुनाया था, उसने बाद में बताया कि खुदीराम बोस एक शेर के बच्चे की तरह निर्भीक होकर फाँसी के तख्ते की ओर बढ़े थे। उनकी शहादत से समूचे देश में देशभक्ति की लहर उमड़ पड़ी थी। उनके साहसिक योगदान को अमर करने के लिए गीत रचे गए और उनका बलिदान लोकगीतों के रुप में मुखरित हुआ। उनके सम्मान में भावपूर्ण गीतों की रचना हुई जिन्हें बंगाल के लोक गायक आज भी गाते हैं।

श्यामजी कृष्ण वर्मा

नितिन बनाक

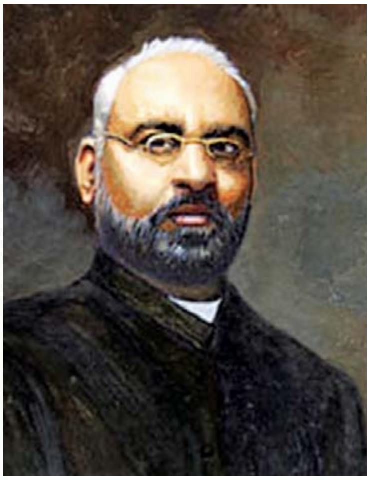

श्यामजी कृष्ण वर्मा एक भारतीय क्रांतिकारी, वकील और पत्रकार थे। वह भारत माता के उन वीर सपूतों में से एक हैं जिन्होंने अपना सारा जीवन देश की आजादी के लिए समर्पित कर दिया। इंग्लैंड से पढ़ाई कर उन्होंने भारत आकर कुछ समय के लिए वकालत की और फिर कुछ राजघरानों में दीवान के तौर पर कार्य किया, पर ब्रिटिश सरकार के अत्याचारों से त्रस्त होकर वह भारत से इंग्लैंड चले गए। वह संस्कृत समेत कई और भारतीय भाषाओं के ज्ञाता थे। उन्होंने 'इंडियन होम रूल सोसायटी', 'इंडिया हाउस' और 'द इंडियन सोशियोलोजिस्ट' संस्थाओं की स्थापना लंदन में की थी। इन संस्थाओं का उद्देश्य वहाँ रहने वाले भारतीयों को देश की आजादी के बारे में अवगत कराना था। श्यामजी ऐसे प्रथम भारतीय थे, जिन्हें ऑक्सफोर्ड से एम. ए. और बार एट लॉ की उपाधियाँ मिली थीं।

प्रारंभिक जीवन

श्यामजी कृष्ण वर्मा का जन्म 4 अक्टूम्बर 1857 को गुजरात के मांडवी कस्बे में हुआ था। उनके पिता का नाम श्रीकृष्ण वर्मा और माता का नाम गोमती बाई था। जब बालक श्यामजी मात्र 11 साल के थे तब उनकी माता का देहांत हो गया जिसके बाद उनका लालन - पालन उनकी दादी ने किया। प्रारंभिक शिक्षा भुज में ग्रहण करने के बाद उन्होंने अपना दाखिला मुंबई के विल्सन हाईस्कूल में कराये थे। मुंबई में रहकर उन्होंने संस्कृत की शिक्षा भी प्राप्ति किया। सन 1857 में उनका विवाह भानुमती से हुआ था भानुमती श्यामजी के दोस्त की बहन और भाटिया समुदाय के एक धनी व्यवसायी की पुत्री थीं। कुछ समय बाद उनकी मुलाकत स्वामी दयानंद सरस्वती से हुई, जो एक समाज सुधारक, वेदों के ज्ञाता और आर्य समाज के संस्थापक थे। श्यामजी शीघ्र ही उनके शिष्य बन गए और वैदिक दर्शन और धर्म पर भाषण देने लगे। सन 1877 के दौरान उन्होंने घूम-घूम कर देश में कई जगहों पर भाषण दिया जिसके कारण उनकी ख्याति चारों और फैल गयी। मोनिएर विलियम्स (जो ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में संस्कृत के प्रोफेसर थे) श्यामजी के संस्कृत ज्ञान से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने उन्हें ऑक्सफोर्ड में अपने सहायक के तौर पर कार्य करने का न्योता दे दिया।

श्यामजी इंग्लैंड पहुँच गए और मोनिएर विलियम्स की अनुशंसा पर उन्हें ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के बल्लिओल कॉलेज में 25 अप्रैल 1879 को दाखिला मिल गया। उन्होंने बी. ए. की परीक्षा सन 1883 में पास कर ली। उन्होंने 'रॉयल एशियाटिक सोसाइटी" में एक भाषण प्रस्तुत किया जिसका शीर्षक था 'भारत में लेखन का उदय'। उनके भाषण को सराहना मिली और इसके कारण रॉयल सोसाइटी की अनिवासी सदस्यता मिल गयी।

भारत वापसी

बी. ए. की पढ़ाई के बाद श्यामजी कृष्ण वर्मा सन 1885 में भारत लौट आये और वकालत करने लगे। कुछ अंतराल के बाद रतलाम के राजा ने उन्हें अपने राज्य का दीवान नियुक्त कर दिया परंतु खराब स्वास्थ के कारण उन्हें यह पद छोड़ना पड़ा। मुंबई में कुछ वक्त बिताने के बाद वह अजमेर में बस गए और अजमेर के ब्रिटिश कोर्ट में अपनी वकालत आरम्भ किया। कुछ वर्ष बाद उन्होंने उदयपुर राजदरबार में सन 1893 से 1895 तक कार्य किया और फिर जूनागढ़ राज्य में भी दीवान के तौर पर कार्य किये लेकिन सन 1897 में एक ब्रिटिश अधिकारी से

इण्डिया हाउस

विवाद के बाद ब्रिटिश राज से उनका विश्वास उठ गया और उन्होंने दीवान की नौकरी छोड़ दी।

राष्ट्रवाद

स्वामी दयानंद सरस्वती का साहित्य पढ़ने के बाद श्यामजी कृष्ण वर्मा उनके राष्ट्रवाद और दर्शन से प्रभावित होकर पहले ही उनके अनुयायी बन चुके थे। स्वामी दयानंद सरस्वती की प्रेरणा से ही उन्होंने लंदन में 'इंडिया हाउस' की स्थापना की थी जिससे मैडम कामा, वीर सावरकर, वीरेन्द्रनाथ चटोपाध्याय, एस. आर. राना, लाला हरदयाल, मदन लाल ढींगरा और भगत सिंह जैसे क्रांतिकारी जुड़े थे। श्यामजी लोकमान्य गंगाधर तिलक के भी बहुत बड़े प्रशंसक और समर्थक थे। उन्हें कांग्रेस पार्टी की अंग्रेजों के प्रति नीति अशोभनीय और शर्मनाक प्रतीत होती थी। उन्होंने चाफेकर बंधुओ के हाथ पूना के प्लेग कमीशनर की हत्या का भी समर्थन किया और भारत की स्वाधीनता की लड़ाई को जारी रखने के लिए इंग्लैंड रवाना हो गये।

उनका विचार था कि असहयोग के द्वारा अंग्रेजों से स्वतंत्रता पायी जा सकती है। वह कहते थे कि यदि भारतीय अंग्रेजों को सहयोग देना बंद कर दें तो अँग्रेजी शासन बहुत जल्द धराशायी हो सकता है।

इंग्लैंड पहुँचने के बाद उन्होंने सन 1900 में लंदन के हाइगेट क्षेत्र में एक आलिशान घर खरीदा जो राजनीतिक गतिविधियों का केंद्र बना। स्वाधीनता आंदोलन के प्रयासों को सबल बनाने के लिए उन्होंने जनवरी 1905 से "इंडियन सोशियोलोजिस्ट" नामक मासिक पत्र का प्रकाशन प्रारंभ किया और 18 फरवरी, 1905 को इंडियन होमरुल सोसायटी की स्थापना की। इस सोसाइटी का उद्देश्य था ''भारतीयों के लिए भारतीयों के द्वारा भारतीयों की सरकार स्थापित करना''। इस घोषणा के क्रियान्वयन के लिए उन्होंने लंदन में 'इंडिया हाउस' की स्थापना की, जो भारत के स्वाधीनता आंदोलन के दौरान इंग्लैंड में भारतीय राजनीतिक गतिविधियों का सबसे बड़ा केंद्र था। बाल गंगाधर तिलक, लाला लाजपत राय, गोपाल कृष्ण गोखले, गाँधी और लेनिन जैसे नेता इंग्लैंड प्रवास के दौरान 'इंडिया हाउस' जाते रहते थे।

श्यामजी कृष्ण वर्मा के राष्ट्रवादी लेखों और सक्रियता ने ब्रिटिश सरकार को चौकन्ना कर दिया। उन्हें 'इनर टेम्पल' से निषेध कर दिया गया और उनकी सदस्यता भी 30 अप्रैल 1909 को समाप्त कर दी गयी। ब्रिटिश प्रेस भी उनके खिलाफ हो गए पर उन्होंने हर बात का जबाब बहादुरी से दिया। ब्रिटिश खुफिया तंत्र उनकी गतिविधियों पर कड़ी नजर रखे हुए थे इसलिए उन्होंने 'पेरिस" को अपनी गतिविधियों का केंद्र बनाना उचित समझा और वीर सावरकर को 'इंडिया हाउस' की ज़िम्मेदारी सौप कर गुप्त रूप से पेरिस चले गए। उन्होंने कहा था कि भारतियों की लूट और हत्या करने वाला सबसे संगठित समूह अंग्रेजों का है।

पेरिस पहुँचकर उन्होंने अपनी गतिविधियाँ फिर शुरू कर दी जिसके स्वरूप ब्रिटिश सरकार ने फ्रांसीसी सरकार पर उनके प्रत्यर्पण का दबाव डाला पर असफल रही। पेरिस में रहकर श्यामजी कई फ्रांसीसी नेताओं को अपने विचार समझाने में सफल रहे। सन 1914 में ब्रिटिश दबाव के कारण वह जिनेवा चले गए वहाँ से अपनी गतिविधियों का संचालन करने लगे। सन 1918 के बर्लिन और इंग्लैंड में आयोजित विधा सम्मेलनों में वह भारत के प्रतिनिधि थे। इंडियन सोसियोलोजिस्ट के प्रथम अंक में लिखा था कि अत्याचारी शासक का विरोध न्योचित हैं यदि जरूरत हो तो पराधीन राष्ट्र को स्वतंत्रता के लिए सशस्त्र संघर्ष का मार्ग अपनाना चाहिए।

निधन

सन 1920 के दशक में श्यामजी कृष्ण वर्मा का स्वास्थ्य प्राय: ठीक नहीं रहा। उन्होंने जिनेवा में भी 'इंडियन सोसियोलोजिस्ट' का प्रकाशन जारी रखा पर ख़राब स्वास्थ्य के कारण सितम्बर 1922 के बाद कोई अंक प्रकाशित नहीं कर पाए। उनका निधन जिनेवा के एक अस्पताल में 30 मार्च 1930 को हो गया। ब्रिटिश सरकार ने उनकी मौत की खबर को भारत में दबाने की कोशिश किया था।

आजादी के लगभग 55 साल बाद 22 अगस्त 2003 को श्यामजी और उनकी पत्नी की आस्तियों को जिनेवा से भारत लाया गया और फिर उनके जन्म स्थान मांडवी ले जया गया। उनके सम्मान में सन 2010 में मांडवी के पास 'क्रांति तीर्थ' नाम से एक स्मारक बनाया गया। भारतीय डाक विभाग ने उनके सम्मान में एक डाक टिकट भी जारी किया और कच्छ विश्व विद्यालय का नाम उनके नाम पर रखा गया।

चन्द्रसिंह भंडारी "गढ़वाली"

सिमनलाल आर्य

चन्द्रसिंह भंडारी "गढ़वाली" का जन्म 25 दिसम्बर 1891 को गढ़वाल के मासी ग्राम में हुआ था। चन्द्रसिंह के पिता का नाम जलौथसिंह भंडारी था। 3 सितम्बर 1914 को चन्द्रसिंह सेना में भर्ती होने के लिए लैंसडौन गए और सेना में भर्ती हो गए। वह प्रथम विश्वयुद्ध का समय था। इसलिए 1 अगस्त 1915 को चन्द्रसिंह को अन्य गढ़वाली सैनिकों के साथ मित्र राष्ट्रों की ओर से यूरोप और मध्य पूर्वी क्षेत्र में भेज दिया। जहाँ से वह 1 फरवरी 1916 को वापस लैंसडौन आ गए। प्रथम विश्व युद्ध के दौरान ही 1917 में चन्द्रसिंह ने अँग्रेजों की ओर से मेसोपोटामिया के युद्ध में भाग लिया। जिसमें अँग्रेजों की जीत हुई थीं। चन्द्रसिंह ने 1918 में बगदाद की लड़ाई में भी हिस्सा लिया था।

प्रथम विश्व युद्ध समाप्त हो जाने के बाद अँग्रेजों द्वारा सैनिकों को निकालना शुरू कर दिया और जिन्हें युद्ध के समय तरक्की दी गयी थी उनके पदों को भी कम कर दिया गया। इसमें चन्द्रसिंह भी थे। जिस कारण इन्होंने सेना को छोड़ने का मन बना लिया। परन्तु उच्च अधिकारियों द्वारा इन्हें समझाया गया कि इनकी तरक्की का ख्याल रखा जाएगा और इन्हें कुछ समय का अवकाश भी दे दिया। इसी दौरान चन्द्रसिंह महात्मा गाँधी के सम्पर्क में आए।

कुछ समय पश्चात इनकी बटालियन को 1920 में बजीरिस्तान भेजा गया। सन् 1920 से 1922 तक चन्द्रसिंह युद्ध मोर्चे पर रहे और सन् 1922 में जब वे लैंसडौन लौटे तो उन्हें फिर हवलदार मेजर बना दिया गया। लैंसडौन में रहते हुए एक कट्टर आर्य समाजी श्री टेकचंद वर्मा के संपर्क में आए और उनसे तथा आर्य समाज के सिद्धांतों से प्रभावित होकर वह भी पक्के आर्य समाजी बन गए। इनके अंदर स्वदेश प्रेम का जज्बा पैदा हो गया। परन्तु अँग्रेजों को पसंद नहीं आया और उन्होंने इनको खैबर दर्रे के पास भेज दिया।

उस समय पेशावर में स्वतंत्रता संग्राम की लौ पूरे जोरशोर के साथ जल रही थी और अँग्रेज इसे कुचलने की पूरी कोशिश कर रहे थे। इसी काम के लिए 1930 में इनकी बटालियन को पेशावर जाने का हुक्म दिया गया। 23 अप्रैल, 1930 को पेशावर में किस्साखानी बाजार में खान अब्दुल गफ्फार खान के लालकुर्ती खुदाई खिदमतगारों की एक आम सभा हो रही थी। अँग्रेज आजादी के इन दीवानों को तितर-बितर करना चाहते थे। कैप्टन रिकेट 72 गढ़वाली सिपाहियों को लेकर जलसे वाली जगह पहुँचे और निहत्थे पठानों पर गोली चलाने का हुक्म दिया। चन्द्रसिंह भंडारी ने कैप्टन रिकेट से कहा कि हम निहत्थों पर गोली नहीं चलाते। इसके बाद गोरे सिपाहियों से गोली चलवाई गई। चन्द्रसिंह और गढ़वाली सिपाहियों का यह मानवतावादी साहस अँग्रेजी हुकूमत की खुली अवहेलना और राजद्रोह था। उनकी पूरी पल्टन एबटाबाद (पेशावर) में नजरबंद कर दी गई, उनपर राजद्रोह का अभियोग चलाया गया।

हवलदार चन्द्रसिंह भंडारी को मृत्यु दण्ड की जगह आजीवन कारावास की सजा दी गईं। 16 लोगों को लम्बी सजायें हुई। 39 लोगों को कोर्ट मार्शल के द्वारा नौकरी से निकाल दिया गया। 7 लोगों को बर्खास्त कर दिया गया, इन सभी का संचित वेतन जब्त कर दिया गया। बैरिस्टर मुकुन्दीलाल ने गढ़वालियों की ओर से मुकदमें की पैरवी की थी। चन्द्रसिंह गढ़वाली को तत्काल ऐबटाबाद जेल भेज दिया गया। 26 सितम्बर, 1941 को 11 साल, 3 महीने और 16 दिन जेल में बिताने के बाद वह रिहा हुए। लेकिन

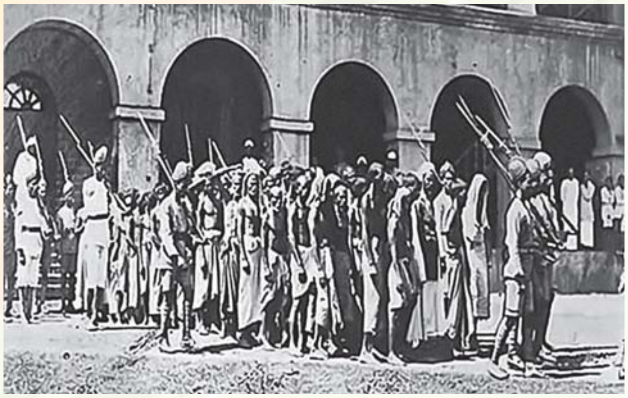

उन्हें गढ़वाल प्रवेश पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। जेल से रिहा होने के बाद कुछ समय तक वह आनन्द भवन, इलाहाबाद रहने के बाद 1942 में अपने बच्चों के साथ वर्धा आश्रम में रहने लगे। भारत छोड़ो आन्दोलन में उत्साही नवयुवकों ने इलाहाबाद में अपना कमाण्डर इन चीफ नियुक्त किया। डॉ. कुशलानन्द गैरोला को डिरेक्टर बनाया गया। इसी दौरान उन्हें फिर से गिरफ्तार कर लिया गया। कई जेलों में कठोर यातनाए दी गईं। 6 अक्टूबर, 1942 को उन्हें सात साल की सजा हुई। 1945 में ही उन्हें जेल से छोड़ दिया गया, लेकिन फिर से गढ़वाल प्रवेश पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। अपने बच्चों के साथ हल्द्वानी आ गए। 22 दिसम्बर 1946 को कम्युनिस्टों के सहयोग के कारण चन्द्रसिंह फिर से गढ़वाल में प्रवेश कर सके। आज़ादी के बाद चन्द्र सिंह भटकते रहे, सभी साथी जिन्हें कालापानी की सजा हुई वे न्याय की आशा में रहे लेकिन उन्हें न्याय नहीं मिला। चन्द्र सिंह रिहाई के बाद सामाजिक, राजनैतिक जीवन में सक्रिय हो गए। उनका कहना था:

> ***"सहश्राब्दियों से जिस जाति व्यवस्था ने हमारे देश की चौथाई मानवता को इस हीन अवस्था में पहुँचाया, वह तब तक उन्हें उठने नहीं देगी जब तक उस व्यवस्था में भीतर आग नहीं लगा दी जाती और यह आग शिक्षा और बेहतर शिक्षा व्यवस्था से ही लगाईं जा सकती है।"***

चन्द्र सिंह गढ़वाली जिन्दगी भर आर्थिक बदहाली में रहे। उनका ये दर्द हमेशा था कि पेशावर काण्ड के क्रांतिकारियों को उत्तर प्रदेश सरकार और भारत सरकार ने कभी सम्मान नहीं दिया। 20 सितम्बर 1954 को उन्होंने उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री को एक पत्र भेजा जिसमे उन्होंने अपनी आर्थिक स्थिति का विवरण दिया था। उनकी झोपड़ी वर्षा से टूट चुकी थी और आमदनी के नाम पर उन्हें 14 रुपये पेंशन मिलती थी। उनके ऊपर 14000 रुपये का कर्ज था। खाने पीने के बर्तन भी नहीं थे। उन्होंने सरकार से अपनी मदद की अपील की। लगभग एक वर्ष बाद 25 जुलाई 1955 को उत्तर प्रदेश सरकार ने एक पत्र भेजकर "खुशी" जाहिर किया कि उन्हें आजीवन 14 रुपये महीने पेंशन मिला करेगी।

शर्म की बात है कि 64 वर्ष की उम्र में देश के लिए इतनी कुर्बानी के बाद और व्यक्तिगत तौर पर पत्र लिखने पर भी सरकार ने उन्हें 14 रुपये लायक ही समझा। यह दर्शाता है के भारत में स्वाधीनता के बाद गैर गांधीवादी विद्रोही नायको के साथ किस प्रकार का व्यवहार किया गया। 1957 में इन्होंने कम्युनिस्ट उम्मीदवार के रूप में चुनाव लड़ा पर उसमें इन्हें सफलता नहीं मिली। 1 अक्टूबर, 1979 को उनका निधन हो गया। 1994 में भारत सरकार द्वारा उनके सम्मान में एक डाक टिकट भी जारी किया गया तथा कई सड़कों के नाम भी इनके नाम पर रखे गए। आज अस्मिताओं के इस युग में चन्द्र सिंह गढ़वाली का नाम लेकर उनको स्मारकों में सीमित करने का प्रयास है लेकिन उनके विचारों से तो सामंतवादी जातिवादी सांप्रदायिक नेताओं और पार्टियों को कोई लाभ नहीं होने वाला क्योंकि उनके विचारों और पेशावर कांड में उनकी ऐतिहासिक भूमिका के लिए उनको आज भी याद किया जाना चाहिए।

वीर चन्द्रसिंह को गढ़वाली को पेशावर कांड के नायक के नाम से जाना जाता है। गाँधीजी के शब्दों में - "मेरे पास बड़े चन्द्रसिंह गढ़वाली जैसे चार आदमी होते तो देश कभी का आजाद हो गया होता।"

पंडित मोतीलाल नेहरू के शब्दों में - "वीर चन्द्रसिंह गढ़वाली को देश न भूले।" उस गढ़वाली को हमारे नेता और इतिहासकार क्यों और कैसे भूल गए। यह हमारे सामने एक गंभीर विचारणीय प्रश्न है। जिस गढ़वाली ने पेशावर कांड द्वारा साम्राज्यवादी अँग्रेजों को यह बताया था कि वह भारतीय सैनिकों की बंदूकों और संगीनों के बलबूते पर अब हिन्दुस्तान पर शासन् नहीं कर सकते, उनकी इतनी उपेक्षा क्यों हुई इतिहासकांरों को इसका जवाब देना होगा।

बैरिस्टर मुकुन्दीलाल के शब्दों में - "आजाद हिन्द फौज का बीज बोने वाला वही है।" आइ.एन.ए. के जनरल मोहन सिंह के शब्दों में - "पेशावर विद्रोह ने हमें आजाद हिन्द फौज को संगठित करने की प्रेरणा दी।"

अचल संपत्ति विनियमन एवं विकास अधिनियम
Real Estate Regulation and Development Act (RERA)

पी डी सिद्दीकी

रोटी, कपड़ा और मकान प्रत्येक मनुष्य की मूल आवश्यकताएँ हैं। इसमें मकान की अहम भूमिका होती है। हर एक इंसान का सपना होता है कि उसका एक अपना घर हो परंतु इस घर को खरीदने में जानकारी की कमी के कारण कभी-कभी लोग झांसे में आकर अपनी जिंदगी की पूरी कमाई गंवा बैठते हैं। भारत सरकार ऐसे धोखाधड़ी के मामलों से निपटने के लिए रेरा का सख्त कानून लाया है जिसमें खरीदार के साथ-साथ बेचने वाले बिल्डर को भी इस कानून से लाभ है।

घर ख़रीदारों के अधिकार की सुरक्षा और विक्रय में पारदर्शिता लाने के वादा सहित भारत सरकार ने बहु-प्रतिक्षित रियल एस्टेट अधिनियम रेरा (RERA) 1 मई 2017 से लागू किया गया है।

हालांकि अब तक केवल 13 राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों ने ही इन नियमों को अधिसूचित किया है। सरकार ने उपभोक्ता-केंद्रित इस अधिनियम के कार्यान्वयन का उल्लेख करते हुए इसे एक ऐसे युग की शुरुआत बताया है जहां उपभोक्ता ही सब कुछ होगा। रियल एस्टेट कारोबार से जुड़ी कंपनियों ने भी इस अधिनियम के कार्यान्वयन का स्वागत किया है। उनका कहना है कि इससे भारतीय रियल एस्टेट सेक्टर के कार्य प्रणाली में बदलाव आएगा। सरकार ने घर खरीदारों की रक्षा के लिए इस कानून को लागू किया है।

रियल एस्टेट (विनियमन और विकास) विधेयक, 2016, संसद में पिछले साल मार्च में पारित हुआ और 1 मई 2017 से ही इस अधिनियम से जुड़ी 92 धाराएं प्रभावी हो गई हैं।

शहरी विकास, आवास तथा शहरी गरीबी उन्मूलन मंत्री ने बताया कि 9 साल के लंबे इंतजार के बाद रियल एस्टेट कानून लागू हुआ है और यह वास्तव में नए युग की शुरुआत है। कानून खरीदार को महत्व देगा, यानी ग्राहक इस सेक्टर का राजा होगा। वहीं दूसरी ओर इससे डेवलपर्स को भी विनियमित माहौल में ग्राहकों का भरोसा बढ़ने से लाभ होगा। इस अधिनियम से क्षेत्र में बहुत अधिक वांछित जवाबदेही, पारदर्शिता और दक्षता सुनिश्चित होगी। इस कानून में खरीदारों और विकासकों के अधिकारों और दायित्वों को परिभाषित किया गया है।

डेवलपर्स को अब उन चल रही परियोजनाओं को पूरा करना होगा, जिन्हें पूर्णता प्रमाण पत्र प्राप्त नहीं हुआ है। साथ ही नए लॉन्च होने वाले प्रोजेक्ट्स का रजिस्ट्रेशन भी 3 महीने के भीतर प्राधिकरण में कराना होगा। रेरा के तहत सभी राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों के लिए प्राधिकरण बनाना अनिवार्य है।

हालांकि अभी तक सिर्फ 13 राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों ने रेरा के तहत कानून अधिसूचित किए हैं। इन राज्यों में उत्तर प्रदेश, गुजरात, ओडिशा, आंध्र प्रदेश, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश और बिहार शामिल हैं। आवास मंत्रालय ने पिछले साल अंडमान और निकोबार द्वीप समूह, चंडीगढ़, दादर और नगर हवेली, दमन और दीव तथा लक्षद्वीप के लिए कानून अधिसूचित किए थे। वहीं, शहरी विकास मंत्रालय ने दिल्ली के राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र के लिए कानून अधिसूचित किए थे। भारतीय रियल एस्टेट क्षेत्र के अंतर्गत कुल 76,000 कंपनियां शामिल हैं।

परियोजनाओं और रियल एस्टेट एजेंटों के अनिवार्य पंजीकरण के अलावा इस अधिनियम के कुछ प्रमुख प्रावधानों में परियोजना निर्माण के लिए एक अलग बैंक खाते में खरीदार से एकत्रित धन का 70 प्रतिशत भाग जमा करना आवश्यक है। इससे परियोजना का समय से पूरा होना सुनिश्चित होगा क्योंकि केवल निर्माण उद्देश्यों के लिए ही धन निकाला जा सकता है।

31 जुलाई तक विकासकों को रीयल एस्टेट रेग्युलेटर के पास अपना पंजीकरण कराना होगा।

इसमें से दिल्ली में 17,431, पश्चिम बंगाल में 17,010, महाराष्ट्र में 11,160, उत्तर प्रदेश में 71,36, राजस्थान में 3,054, तमिलनाडु में 3,004, कर्नाटक में 2,261, तेलंगाना में 2,211, हरियाणा में 2,121, मध्य प्रदेश में 1,956, केरल में 1,270, पंजाब में 1,202 और ओडिशा में 1,006 कंपनियां पंजीकृत हैं।

अधिनियम की मुख्य बातें:

- ★ तीन महीने के भीतर नए और पुराने प्रोजेक्ट का पंजीकरण प्राधिकरण में करना होगा।
- ★ निश्चित नियमों के अनुसार प्रोजेक्ट पर काम होगा, खरीदार व बिल्डर के बीच गलतफहमी नहीं होगी।
- ★ नया प्रोजेक्ट शुरू करते समय खरीदारों से इकट्ठा की गई राशि का 70% अलग बैंक अकाउंट में रखना होगा। वहीं, पुराने प्रोजेक्ट की बची राशि के 70% का अलग कोष बनाना होगा।
- ★ पांच साल तक फ्लैट के रख-रखाव की ज़िम्मेदारी डेवलपर के पास होगी।
- ★ रेगुलेरिटी अथॉरिटी या अपीलीय प्राधिकरण के आदेशों का उल्लंघन करने पर डेवलपर को तीन साल और एजेंट या खरीदार को एक साल जेल की सजा हो सकती है।
- ★ बिल्डर व खरीदार की ब्याज दर एबीआई के सीमांत लागत पर देय होगी। किसी भी हालत में विलंब होने पर 2% अतिरिक्त देना होगा।

घर खरीदने से पहले इन बातों का ध्यान रखें :

- ★ भारत के जिस राज्य में प्रॉपर्टी खरीद रहे हैं उस राज्य की रेरा वेबसाइट पर जाकर प्रोजेक्ट की जांच कर लें,
- ★ वेबसाइट पर आपको प्रोजेक्ट की स्थिति व बिल्डरों का रजिस्ट्रेशन इत्यादि की जानकारी आसानी से मिल जाएगी,
- ★ प्रोजेक्ट पूर्ण होने की जानकारी होगी,
- ★ प्रोजेक्ट पूरा होने से पहले कितना भुगतान करना है और कितना बाद में देना है,
- ★ बिल्डर के ट्रैक रिकॉर्ड का भी पता करना जरूरी होता है,
- ★ जिस क्षेत्र में आप प्रॉपर्टी खरीद रहे हैं उस क्षेत्र में प्रॉपर्टी का रेट बढ़ रहा है या घट रहा है,
- ★ टर्म एवं कंडीशन को ध्यान से पढ़ लें क्योंकि उसमें ऐसे भाषा का प्रयोग होता है जो ग्राहक की समझ में आसानी से नहीं आएगी।

रेरा (RERA) से संबंधित आवश्यक तथ्य इस प्रकार हैं...

ऑनलाइन जानकारी

बिल्डर्स को अथॉरिटी की वेबसाइट पर पेज बनाने के लिए लॉग-इन आईडी और पासवर्ड दिया जाता है। इसके जरिए उन्हें

प्रॉजेक्ट से जुड़ी सभी जानकारी अपलोड करनी होगी। हर तीन महीने पर प्रॉजेक्ट की स्थिति का अपडेट देना होगा।

विज्ञापन

रेरा में रजिस्ट्रेशन के बिना कोई भी प्रमोटर किसी प्रॉजेक्ट का विज्ञापन नहीं दे सकता है।

पूरी जानकारी देनी होगी

रेरा के तहत केवल नए लॉन्च होने वाले प्रॉजेक्ट्स ही नहीं आएंगे, बल्कि पहले से जारी प्रॉजेक्ट्स को भी इसके जरिए नियंत्रित किया जाएगा। बिना कंप्लीशन सर्टिफिकेट वाले डेवेलपर्स को सारी जानकारी सार्वजनिक करनी होगी। मसलन, वास्तविक सैंक्शन प्लान, बाद में किए गए बदलाव, कुल एकत्रित धन, रुपए कितना खर्च हुआ, प्रॉजेक्ट पूरा होने की वास्तविक तारीख क्या थी और कब तक पूरा कर लिया जाएगा। सभी राज्यों में रेग्युलेटरी अथॉरिटी को रियल एस्टेट प्रॉजेक्ट्स और रजिस्टर्ड रियल स्टेट एजेंट्स को नियंत्रित करना होगा। अथॉरिटी को एक वेबसाइट भी मेंटेन करनी होगी, जिसमें सभी प्रॉजेक्ट्स की जानकारी अपडेट होगी।

बुकिंग राशि

वर्तमान में अधितकर बिल्डर बुकिंग राशि के रूप में प्रॉपर्टी की कुल कीमत का 10% हिस्सा लेते हैं। रेरा के अनुसार, अग्रिम भुगतान या आवेदन शुल्क के रूप में विकासक 10% से अधिक राशि नहीं ले सकते, जब तक कि बिक्री के लिए रजिस्टर्ड अग्रीमेंट न हो जाए।

कंस्ट्रक्शन की क्वॉलिटी

कंस्ट्रक्शन की क्वॉलिटी भी एक बड़ा मुद्दा है। रेरा के अंतर्गत क्वॉलिटी को भी सुनिश्चित करने की कोशिश की गई है। पजेशन के 5 साल के भीतर यदि कहीं क्षति होती है तो प्रमोटर को बिना कोई शुल्क लिए 30 दिन के भीतर मरम्मत करानी होगी। देरी से डिलिवरी देने पर मुआवजा का प्रावधान है, प्रॉजेक्ट में देरी अब बिल्डर्स को महंगी पड़ेगी। यदि समय पर पजेशन नहीं मिलता है तो खरीदार अपना पूरा पैसा ब्याज सहित वापस ले सकते हैं, या फिर उन्हें पजेशन मिलने तक हर महीने ब्याज विकासक को देना होगा।

शिकायतों को दूर करने की व्यवस्था

सभी राज्यों में रियल एस्टेट अपीलीय ट्रिब्यूनल का गठन किया जाएगा। यदि किसी व्यक्ति को अथॉरिटी के किसी फैसले या आदेश पर सहमति न हो तो वह ट्राइब्यूनल के सामने अपील दाखिल कर सकता है।

मुंबई की आवासीय समस्या में सुधार की उम्मीद

चूंकि राजभाषा ''जलतरंग'' पत्रिका माझगाव डॉक शिपबिल्डर्स लिमिटेड, मुंबई द्वारा प्रकाशित की जाती है, मुंबई के लोगों की आवासीय समस्याओं का उल्लेख आवश्यक हो जाता है। मुंबई भारत की आर्थिक राजधानी के रूप में जानी जाती है। इस शहर की लगभग 60% आबादी झोपड़ों में रहती है। आवास यहाँ की मुख्य समस्या है। मुंबई में जमीन या घर दूसरे शहरों से महगें होते हैं इसलिए यहाँ के रहिवासी छत के लिए जिन्दगी भर की गाढ़ी कमाई लगा देते हैं। निम्न एवं मध्यम वर्ग के लोगों के लिए घर तो मुंबई में सपनों से परे है। कभी-कभी घर लेने के चक्कर में यहाँ के लोग बर्बाद हो जाते हैं। घर लेने के बाद भी बिल्डिंग की ऑकुपेन्सी सर्टिफिकेट (OC) और कनवेन्स (conveyance) बिल्डरों द्वारा नहीं दी जाती है। मुंबई शहर की 50% से अधिक इमारतों को ओसी और कनवेन्स बिल्डर नहीं देते। ओसी न मिलने पर घर खरीदार महंगे दर पर पानी एवं अन्य सुविधाएँ लेने के लिए मजबूर होते हैं। कनवेन्स न होने के कारण उनको बिल्डिंग का मालिकाना हक नहीं प्राप्त होता है। महाराष्ट्र सरकार ने रियल इस्टेट में सुधार के लिए कुछ कानून अवश्य बनाए हैं जिससे सुधार होने की संभावना है। भारत सरकार द्वारा लागू रेरा कानून से बिल्डरों की मनमानी पर लगाम लगेगा और लोगों को सपनों का घर साकार होगा तथा इस क्षेत्र में पारदर्शिता आएगी जो खरीदारों एवं विकासकों के बेहतरी के लिए होगा।

आशा करते हैं कि रेरा से संबन्धित दी गई जानकारी घर ख़रीदारों के लिए लाभप्रद सिद्ध होगी तथा सरकार की आवास योजना के तहत सबको अपना घर उपलब्ध होगा और घर का सपना पूरा होगा।

चाफेकर बंधु

प्रदीप महाडेश्वर

वीर दामोदर पंत चाफेकर का जन्म 24 जून 1869 को पूणें के ग्राम चिंचवड में हुआ था। इनके पिता श्री हरिपंत चाफेकर प्रसिद्ध कीर्तनकार थे। इनकी माता का नाम लक्ष्मीबाई था। 22 जून 1897 को अँग्रेज अधिकारी रैंड को मौत के घाट उतार कर भारत की स्वतंत्रता की लड़ाई में प्रथम क्रांतिकारी थे। उनके दो छोटे भाई क्रमश: बालकृष्ण चाफेकर एवं वसुदेव चाफेकर थे। बचपन से ही सैनिक बनने की इच्छा दामोदर पंत के मन में थी, विरासत में कीर्तनकार का यश-ज्ञान मिला था। महर्षि पटवर्धन एवं लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक उनके आदर्श थे।

तिलक जी की प्रेरणा से उन्होंने युवकों का एक व्यायाम मंडल संगठन तैयार किया। ब्रितानिया हुकूमत के प्रति उनके मन में बचपन से ही तिरस्कार का भाव था। दामोदर पंत ने बंबई में रानी विक्टोरिया के पुतले पर तारकोल पोत कर, तथा गले में जूतों की माला पहना कर अपना रोष प्रकट किया था। सन् 1894 से चाफेकर बंधु पूना में प्रति वर्ष शिवाजी एवं गणपति श्लोक का पाठ करते थे। प्रथम शिवाजी श्लोक के अनुसार, "भांड की तरह शिवाजी की कहानी दोहराने मात्र से स्वाधीनता प्राप्त नहीं की जा सकती"। आवश्यकता इस बात की है कि शिवाजी की तरह तेजी के साथ काम किए जाएं। आज हर भले आदमी को तलवार और ढाल पकड़नी चाहिए, यह जानते हुए कि हमें राष्ट्रीय संग्राम में जीवन का जोखिम उठाना होगा। हम धरती पर उन दुश्मनों का खून बहा देंगे, जो हमारे धर्म का विनाश कर रहे हैं। हम तो मारकर मर जाएंगे, लेकिन तुम औरतों की तरह सिर्फ कहानियाँ सुनाते रहोगे। दूसरे गणपति श्लोक में धर्म और गाय की रक्षा के लिए कहा जाता था। दामोदर पंत ने कहा था कि, "तुम गुलामी की जिंदगी पर शर्मिंदा नहीं हो तो, जाओ आत्म हत्या कर लो! ये अंग्रेज़ कसाइयों की तरह गाय और बछड़ों को मार रहे हैं, उन्हें इस संकट से मुक्त कराओ, मरो, लेकिन अंग्रेज़ों को मारकर। नपुंसक होकर धरती पर बोझ न बनो, इस देश को हिंदुस्तान कहा जाता है। अंग्रेज़ भला किस तरह यहाँ राज कर सकते हैं?"

साहसिक कार्य

सन् 1897 में पुणें नगर प्लेग जैसी भयंकर बीमारी से पीड़ित था। इस स्थिति में भी अंग्रेज अधिकारी जनता को अपमानित तथा उत्पीड़ित करते रहते थे। वाल्टर चार्ल्स रैण्ड तथा आयर्स्ट अंग्रेज अधिकारी लोगों को जबरन पुणें से निकाल रहे थे। जूते पहनकर ही हिन्दुओं के पूजाघरों में घुस जाते थे। इस तरह ये अधिकारी प्लेग पीड़ितों की सहायता की जगह लोगों को प्रताड़ित करना ही अपना अधिकार समझते थे। ये तीनों भाई लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक के सम्पर्क में थे। तीनों भाई तिलक जी को गुरुवत सम्मान देते थे। किसी अत्याचार-अन्याय के सन्दर्भ में एक दिन तिलक जी ने चाफेकर बन्धुओं से कहा, "शिवाजी ने अपने समय में अत्याचार का विरोध किया था, किन्तु इस समय अंग्रेजों के अत्याचार के विरोध में तुम लोग क्या कर रहे हो?" तिलक की सलाह पर तीनों भाइयों ने क्रान्ति का मार्ग अपना लिया और संकल्प लिया कि इन

दोनों अंग्रेज अधिकारियों की हत्या करेंगे। संयोगवश वह अवसर भी आ गया। जब 22 जून 1897 को पुणें के "गवर्नमेन्ट हाउस" में महारानी विक्टोरिया की 60वीं वर्षगाँठ के अवसर पर राज्यारोहण की हीरक जयन्ती मनायी जाने वाली थी। इसमें वाल्टर चार्ल्स रैण्ड और आयर्स्ट भी शामिल हुए थे। दामोदर हरि चाफेकर और उनके भाई बालकृष्ण हरि चाफेकर भी एक दोस्त विनायक रानाडे के साथ वहाँ पहूँच गए और इन दोनों अंग्रेज अधिकारियों के निकलने की प्रतीक्षा करने लगे। रात 12 बजकर, 10 मिनट पर रैण्ड और आयर्स्ट निकले और अपनी-अपनी बग्घी पर सवार होकर चल पड़े। योजना के अनुसार दामोदर हरि चाफेकर रैण्ड की बग्घी के पीछे चढ़ कर उसे गोली मार दी और बालकृष्ण हरि चाफेकर ने भी आयर्स्ट पर गोली दाग दिया। जिसके कारण आयर्स्ट की तुरन्त मौत हो गई। मौत का समाचार सुनकर पुणें की आम जनता ने दोनों भाइयों की जयजयकार किया। पुलिस विभाग के अधिकारी दोनों भाइयों को गिरफ्तार करने के लिए जी-जान से लग गये। गुप्तचर अधीक्षक ब्रुइन ने घोषणा किया कि इन फरार लोगों को गिरफ्तार कराने वाले को 20 हजार रुपए का पुरस्कार दिया जाएगा। चाफेकर बन्धुओं के क्लब में ही दो द्रविड़ बन्धु थे। गणेश शंकर द्रविड़ और रामचन्द्र द्रविड़। इन दोनों ने पुरस्कार के लोभ में आकर अधीक्षक ब्रुइन को चाफेकर बन्धुओं का सुराग दे दिया। इसके बाद दामोदर हरि चाफेकर पकड़ लिए गए, पर बालकृष्ण हरि चाफेकर पुलिस के हाथ न लगे। सत्र न्यायाधीश ने दामोदर हरि चाफेकर को फाँसी की सजा दी और उन्होंने मुस्कुराते हुए यह सजा सुनी। कारागृह में तिलक जी उनसे भेंट किए और उन्हें "गीता" प्रदान की। 18 अप्रैल 1818 को प्रातः वही "गीता" पढ़ते हुए दामोदर हरि चाफेकर फाँसी घर पहुँचे और फाँसी के तख्ते पर लटक गए। उस क्षण भी "गीता" उनके हाथ में थी।

बालकृष्ण चाफेकर ने जब यह सुना कि उसको गिरफ्तार न कर पाने से पुलिस उसके सगे-सम्बंधियों को सता रही है तो वह स्वयं पुलिस थाने में उपस्थित हो गए। तत्पश्चात तीसरे भाई वासुदेव चाफेकर ने अपने साथी महादेव गोविन्द विनायक रानडे को साथ लेकर गद्दार द्रविड़-बन्धुओं को घेर कर गोली मार दी। यह 8 फ़रवरी 1899 की घटना थी। इसके कारण वासुदेव चाफेकर को 8 मई को और बालकृष्ण चाफेकर को 12 मई 1899 को पुणें के यरवदा कारागृह में फाँसी दी गई। तिलक जी द्वारा प्रवर्तित "शिवाजी महोत्सव" तथा "गणपति-महोत्सव" ने इन तीनों युवकों को देश के लिए कुछ कर गुजरने हेतु क्रांति- पथ का पथिक बनाया था। उन्होंने ब्रिटिश राज के आततायी व अत्याचारी अंग्रेज अधिकारियों को बता दिया गया कि हम अंग्रेजो को अपने देश का शासक कभी स्वीकार नहीं करते और उनको गोली मारना अपना धर्म समझते हैं। इस प्रकार अपने जीवन-दान के लिए उन्होंने देश या समाज से कभी कोई प्रतिदान की चाह नहीं रखी। वे महान बलिदानी कभी यह कल्पना नहीं कर सकते थे कि यह देश ऐसे गद्दारों से भर जाएगा, जो भारतमाता की वन्दना करने से इनकार करेंगे।

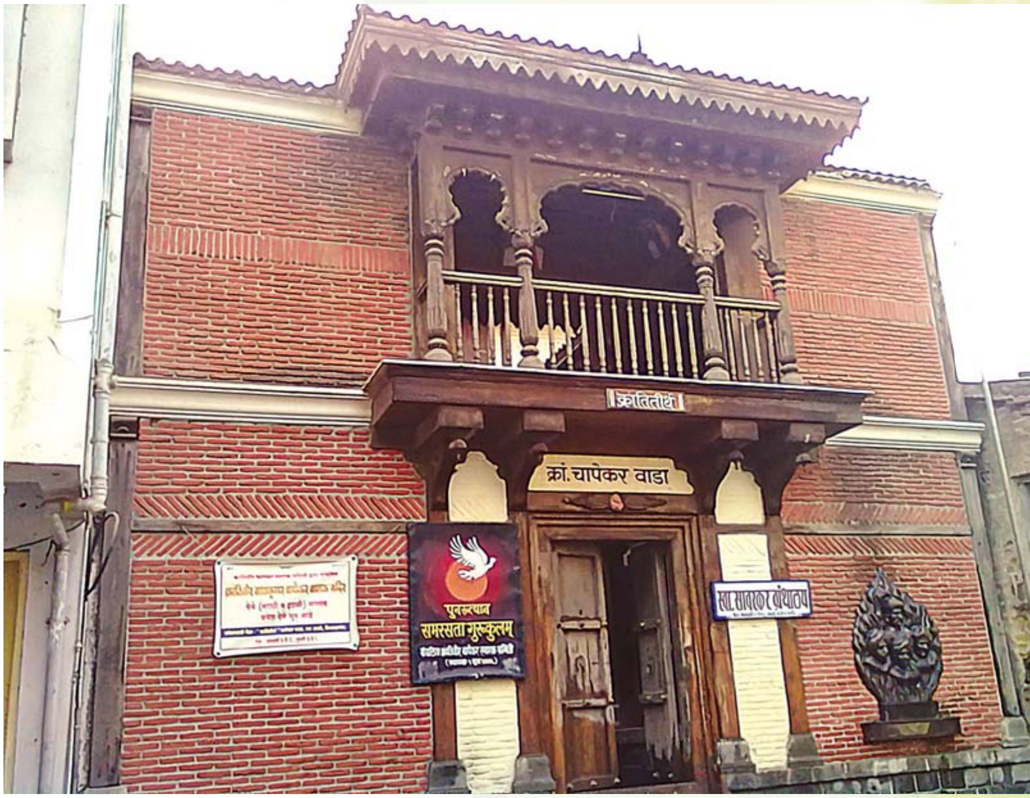

एमडीएल में कार्यक्रम की झलकियाँ

29 अगस्त, '17 को वित्तीय वर्ष 2017-18 की वित्तीय रिपोर्ट पर हस्ताक्षर करते हुए सीएमडी साथ में खड़े कैप्टन राजीव लठ नि (पन एवं भा.अभि) और श्री संजीव शर्मा निदेशक (वित्त)

29 अगस्त, '17 को वित्तीय वर्ष 2017-18 के लिए वित्तीय ब्यौरा पर सीएमडी कमोडोर राकेश आनन्द के हस्ताक्षर के उपरांत साथ खड़े वरिष्ठ अधिकारीगण

4 जुलाई,'17 को एमडीएल, पूर्व खंड के दौरे पर आए विदेशी मीडिया के साथ अधिकारीगण

एमडीएल के दौरे पर विदेशी मीडिया के साथ बातचीत करते हुए कैप्टन राजीव लठ, नि (पन एवं भा.अ)

दिनांक 1 जुलाई, '17 को भारत- रूसी संबंध को आगे बढ़ाने हेतु एक समारोह में सीएमडी के साथ रूसी प्रतिनिधि

भारत- रूसी संबंध पर चर्चा करते हुए सीएमडी कमोडोर राकेश आनन्द

एमडीएल में कार्यक्रम की झलकियाँ

रूसी प्रतिनिधि से हाथ मिलते हुए सीएमडी कमोडोर राकेश आनन्द के साथ बाएँ से श्री एच वी हरयानी, कानि,(जनि-वाणिज्य), डॉ. जांगीर, मप्र, (प्रशासन)

भारत रूसी संबंध कार्यक्रम में रूसी प्रतिनिधि द्वारा दीप प्रज्वलित करते समय सीएमडी कमोडोर राकेश आनन्द एवं कैप्टन राजीव लठ, नि (पन एवं भा.अ)

पीईएसबी के सीएमडी श्री संजय कोठारी के एमडीएल दौरा के समय उनका स्वागत करते हुए सीएमडी कमोडोर राकेश आनन्द

श्री संजय कोठारी सीएमडी पीईएसबी को जहाज निर्माण से संबन्धित जानकारी देते हुए श्री राजीव शेण्डे मप्र (पी15 बी) साथ में सीएमडी तथा अन्य उच्च अधिकारीगण

श्री संजय कोठारी सीएमडी पीईएसबी का 9 मई 2017 को एमडीएल पूर्वखंड का दौरा

9 मई 2017 को श्री संजय कोठारी सीएमडी पीईएसबी के साथ प्रतिनिधियों का एमडीएल दौरा

एमडीएल में कार्यक्रम की झलकियाँ

खादी ग्राम उद्योग की सामग्री का एमडीएल परिसर के बाहर प्रदर्शनी का उद्‌घाटन करते हुए डॉ हिरेन देसाई, सीएमओ एमडीएल तथा अन्य अधिकारीगण

खादी ग्राम उद्योग प्रदर्शनी के सामने खड़े सीएसआर से संबंधित अधिकारी एवं कर्मचारीगण

सुश्री सीमा बहुगुणा आईएएस सचिव (डीपीई) का 26 मई, '17 को एमडीएल दौरा के समय चर्चा करते हुए नि (वित्त), एवं नौसेना एवं वरिष्ठ एमडीएल अधिकारी

एमडीएल दौरा पर आई सुश्री सीमा बहुगुणा आईएएस सचिव (डीपीई) को एमडीएल उत्पाद संबंधी जानकारी देते हुए श्री राजीव शेण्डे एवं अधिकारीगण

स्वच्छ भारत अभियान के अंतर्गत एमडीएल में स्वच्छता कार्यक्रम की अगुवाई करते हुए सीएमडी कमोडोर राकेश आनन्द के साथ दाएँ श्री वी के शुक्ला और श्री एस एस कांबले मप्र,(मा.सं एवं क.सं)

एमडीएल में स्वच्छता कार्यक्रम के अंतर्गत एमडीएल परिसर के बाहर सफाई करते हुए अधिकारीगण

एमडीएल में कार्यक्रम की झलकियाँ

14 अप्रैल, '17 को एमडीएल में डॉ बाबा साहब भीमराव अंबेडकर की जयंती पर प्रार्थना करते हुए कर्मचारीगण

डॉ भीमराव अंबेडकर की जयंती पर उपस्थित सीएमओ के साथ अधिकारीगण

दिनांक 30 मई 2017 को दिल्ली में रक्षा उत्पादन प्रदर्शनी में रक्षा मंत्री श्री अरुण जेठली को सोनार डोम से अवगत कराते हुए कमोडोर राकेश आनन्द सीएमडी, एमडीएल

रक्षा मंत्री श्री अरुण जेठली से वर्ष 2014-15 के लिए "बेस्ट एक्सिलेंस" पुरस्कार प्राप्त करते हुए कमोडोर राकेश आनन्द, सीएमडी एवं श्री संजीव शर्मा, निदेशक (वित्त)

दिनांक 19 मई, '17 को उच्च अधिकारियों के लिए हिन्दी टाइपिंग कार्यशाला में संबोधन करते हुए कमोडोर राकेश आनन्द सीएमडी

उच्च अधिकारीगण को हिन्दी टाइपिंग कार्यशाला में प्रशिक्षण देते हुए डॉ अनंत श्रीमाली, सहायक निदेशक (हिन्दी प्रशिक्षण संस्थान)

एमडीएल में कार्यक्रम की झलकियाँ

विभागीय राजभाषा बैठक में तिमाही रिपोर्ट पर चर्चा करते हुए
श्री श्रीनिवास सिन्हा, उमप्र (मा.सं- एवं हिन्दी)

22 जून '17 को विभागीय राजभाषा बैठक में उपस्थित
उच्च अधिकारीगण

हिन्दी राजभाषा पत्रिका "जलतरंग" के 7वें अंक का विमोचन
करते हुए बाएँ से श्री संजीव शर्मा, नि(वित्त), सीएमडी कमोडोर
राकेश आनन्द और श्री राजीव पेंढारकर, मुसअ

"जलतरंग" के 7वें अंक के विमोचन के बाद
उसे पढ़ते हुए अधिकारीगण

स्वतंत्रता दिवस पर जनसमूह को संबोधित करते हुए
सीएमडी कमोडोर राकेश आनन्द

15 अगस्त के अवसर पर सीआईएसएफ़ के परेड का
निरीक्षण करते हुए एमडीएल के अध्यक्ष एवं प्रबंध निदेशक,
कमोडोर राकेश आनन्द

एमडीएल में कार्यक्रम की झलकियाँ

बांग्लादेश नौसेना का एमडीएल दौरा दिनांक 14 अगस्त 2017

एमडीएल सीएमडी कमोडोर राकेश आनन्द का बांग्लादेश नौसेना प्रमुख को शील्ड प्रदान करते हुए

विश्व पर्यावरण दिवस पर वृक्षारोपण करते हुए एमडीएल के अध्यक्ष एवं प्रबंध निदेशक, कमोडोर राकेश आनन्द, उनके साथ अन्य निदेशक और अधिकारी गण

6 जून 2017 को वृक्षारोपण करते हुए एमडीएल के अधिकारीगण

अंतर्राष्ट्रीय योग दिवस का उद्घाटन करते हुए अध्यक्ष एवं प्रबंध निदेशक, कमोडोर राकेश आनन्द , कैप्टन राजीव लठ, श्री संजीव शर्मा निदेशक और अधिकारी गण

अंतर्राष्ट्रीय योग दिवस के अवसर पर योगाभ्यास करते हुए अधिकारी एवं प्रशिक्षुगण

सरदार उधम सिंह

अरुणेश मुद्‌गल

इनका जन्म 1 दिसंबर 1899 को एक सिक्ख परिवार में पंजाब राज्य के संगरूर जिले के सुनम गाँव में हुआ था। सरदार उधम सिंह की माँ का नाम नारायणी देवी था। सन् 1901 में उनका देहांत हो गया था। उनके पिताजी सरदार तेजपाल सिंह रेलवे क्रासिंग गार्ड थे।

शहीद उधम सिंह का बचपन में नाम शेर सिंह था लेकिन अनाथालय में सिख दीक्षा संस्कार देकर उनका नाम उधम सिंह रखा गया। उनका परिवार पंजाब के दलित समाज से सम्बंधित था।

जब बच्चे स्कूल जाने के लायक हुए तो आसपास कोई स्कूल नहीं था। इनके पड़ोस में एक पंडित जी रहते थे। वह बहुत ही दयालु थे उन्होंने इन बच्चों को पढ़ाने का वायदा किया। प्रतिदिन वह घर आकर पढ़ा जाते थे। उन्होंने उधमसिंह की तेज बुद्धि को देखकर एक दिन टहलसिंह से कहा, "इन बच्चों का किसी अच्छे स्कूल में नाम लिखा दो।"

पंडित जी की बात सुनकर सिंह ने कहा, "बहुत गरीब हूँ। इन्हें अच्छे स्कूल में कैसे पढ़ा पाऊँगा।"

पंडित जी बोले, अपनी बदली किसी शहर के स्टेशन् पर करवा लो और इन बच्चों की पढ़ाई का प्रबंध करो। पंडित जी की सलाह से तेजपाल सिंह ने अपनी बदली अमृतसर के रेलवे स्टेशन् पर करवा ली। वहीं रहने लगे और दोनों बच्चों का नाम एक स्कूल में लिखा दिया। दोनों बच्चे स्कूल जाने लगे।

कहते है; जब मुसीबत आती है तो कहीं भी पीछा नहीं छोड़ती। सन् 1907 में एक दिन अचानक सिंह का भी देहांत हो गया। दोनों बच्चे अनाथ हो गए। दोनों अभी अबोध थे। कहाँ जाएं क्या करें, उन्हें कुछ पता ही नहीं था। कोई रिश्तेदार भी काम नहीं आए। तेजपाल सिंह का अंतिम संस्कार पास-पड़ोस के लोगों ने किया। उस रात दोनों बच्चे घर में बिलखते रहे। कब सोए होंगे, कोई नहीं जानता।

दूसरे दिन उनके स्कूल के एक अध्यापक पं. जयचंद्र शर्मा आ गए। उन्होंने दोनों बच्चों को प्यार किया। उनके आँसू पोंछे और स्वयं भी इतने दुखी हो गए कि उनकी आँखे डबडबा आईं। उन्होंने सोचा, इन अनाथ बालकों को अब कौन देखेगा? ये किसके सहारे जिंदा रहेंगे? कौन इन्हें भोजन देगा? यही सब सोच कर उन्होंने दोनों बालकों को खालसा अनाथालय में भर्ती करवा दिया।

दोनों बच्चे अनाथालय से स्कूल आते रहे। पंडित शर्मा का उनसे असीम प्यार बना रहा। लेकिन दुर्भाग्य ने अभी भी उनका पीछा नहीं छोड़ा। मुक्ता सिंह को निमोनिया हो गया और असमय एक दिन वह भी स्वर्ग सिधार गया। अकेला उधम सिंह बच गया।

अब उधम सिंह बेसहारा तथा अनाथ था। शर्मा जी ही उधम सिंह का सहारा बने रहे। कुछ दिन उन्होंने उन्हें अपने घर रखा। उनकी पढ़ाई-लिखाई का प्रबंध करते रहे।

इसी प्रकार उधम सिंह का बचपन अभावों एवं घोर मुसीबतों में बीता। अनाथ आश्रम में रहते हुए वह किशोर हो गए। जयचंद्र शर्मा उनके सच्चे गुरु थे। उनसे उन्हें पिता जैसा स्नेह मिला और सबसे बड़ी शिक्षा मिली देशभक्ति की। उनके उपर सबसे अधिक प्रभाव मदनलाल ढ़ींगरा का पड़ा। मंगल पांडे के चरित्र ने भी उन्हें प्रभावित किया।

इसी बीच जलियाँवाला हत्याकाँड की जाँच के लिए इंग्लैंड से एक कमेटी भेजी गई। इसे हंटर कमीशन कहा गया। हंटर नामक एक अंग्रेज इसका अध्यक्ष था। हंटर कमेटी ने जनरल ओ डायर और सर माइकल डायर को दोषी ठहराया। इसके बाद उन दोनों को नौकरी से निकाल दिया गया। वे दोनों इंग्लैंड वापस चले गए।

दोनो के इंग्लैड चले जाने का समाचार उधम सिंह को ज्ञात हुआ वह बेचैन हो गये। अपने एक रिश्तेदार के मोटर गैरेज में नौकरी कर ली। वहाँ मोटर चलाना और मरम्मत करना सीखा।

कुछ दिनों बाद मोटर गैरेज की नौकरी छोड़कर वे सहारनपुर चले आए। वहाँ कुछ दिनों तक ड्राइवर की नौकरी की। वहाँ से लखनऊ चले गए। वहाँ एक तालुकेदार के यहाँ नौकरी कर ली। तालुकेदार के यहाँ से भी नौकरी छोड़ दी।

उन्हीं दिनों उनकी मुलाकात एक ऐसे भारतीय से हुई जो अफ्रिका में रह कर व्यापार करता था। उसके साथ वह अफ्रीका चले गए और वहाँ नौकरी करने लगे। वही व्यापारी उन्हें अमरीका ले गया। कुछ दिनों तक वह अमरीका रहे। अमरीका से पुनः अफ्रीका लौट आए और कुछ दिनों बाद पंजाब वापस आ गए।

13 अप्रैल 1919 को स्थानीय नेताओं ने अंग्रेजो के रोलेट एक्ट के विरोध में जलियाँवाला बाग में एक विशाल सभा का आयोजन किया था। अमृतसर के जलियाँवाला बाग में उस समय लगभग 20,000 निहत्थे प्रदर्शनकारी जमा हुए थे। उस समय उधम सिंह और उनके अनाथालय के दोस्त विशाल सभा के लिए पानी की व्यवस्था में लगे हुए थे। उधम सिंह बचपन से ही निडर स्वभाव के थे।

जब अंग्रेज जनरल डायर को जलियाँवाला बाग में विद्रोह का पता चला तो उसने विद्रोह का दमन करने के लिए अपनी सेना को बिना किसी पूर्व सूचना के निहत्थे प्रदर्शनकारियों पर अंधाधुंध गोलिया

जलियाँवाला बाग स्मारक

चलाने का आदेश दिया। अब डायर के आदेश पर डायर की सेना ने 15 मिनट में 1650 राउंड गोलियाँ चलाई थी।

जलियाँवाला बाग में प्रवेश करने और बाहर निकलने का सिर्फ एक ही रास्ता था और चारों तरफ से चाहरदीवारी थी। उस छोटे से दरवाजे पर भी जनरल डायर ने तोप लगवा दिया था जो भी बाहर निकलने का प्रयास करता उसे तोप से उड़ा दिया जाता था। अब लोगों के लिए बाहर निकलने का कोई रास्ता नहीं था और लगभग 3000 निहत्थे लोग उस भारी नरसंहार में मारे गये और 1200 लोग घायल हुए थे। उस जलियाँवाला बाग में एक कुआँ था। लोग अपनी जान बचाने के लिए उस कुएँ में कूद गये लेकिन कुएँ में बचने के बजाय लाशों का ढेर लग गया। इसके बाद भी जब जनरल डायर वहाँ से निकलते वक्त अमृतसर की गलियों में भारतीयों पर गोलियाँ चलाते हुए गया था। इस गोलीबारी के दौरान उधम सिंह जान बचाने के लिए पेड़ पर चढ़ गए थे और पत्तों में सिर छिपाकर बैठे रहे जिसके कारण वह जीवित बच गए थे। उन्होंने अपनी आँखों से ये नरसंहार देखा था जिससे उन्हें भारी आघात लगा। उधम सिंह उस समय लगभग 20 वर्ष के थे उन्होंने यह संकल्प लिया कि "जिस डायर ने क्रूरता के साथ मेरे देश के नागरिकों की हत्या की है इस डायर को मैं जीवित नहीं छोडूंगा और यही मेरे जीवन का आखिरी संकल्प है।" सन् 1924 में वह गदर पार्टी में शामिल हो गये और भगत सिंह के पद चिन्हों पर चलने लगे।

इस हत्याकांड के मुख्य तीन आरोपी थे। पहले पंजाब के गवर्नर सर माइकल ओ डायर, दूसरे ब्रिगेडियर ई.एच. डायर, और तीसरे भारत के राज्य सचिव जेट लैंड इन तीनों को मारने की प्रतिज्ञा उधम सिंह ने की थी। इसमें से एक मैकल आ डायर की मृत्यु सन् 1927 में हो गई और दूसरे की हत्या उधम सिंह ने लन्दन में जाकर की थी। भारत में धन एकत्र करने के उद्देश्य से उन्होंने अनेकों प्रकार के कार्य किये और लगातार स्थान बदलते रहे। एक बार एक भारतीय व्यापारी के साथ अफ्रीका गये फिर व्यापार के संबंध में आगे बढ़ते हुए अमेरिका चले गये। क्रांतिकारियों से प्रभावित होकर अमेरिका से एक रिवाल्वर लेकर भारत आये। रिवाल्वर का लाइसेन्स न होने के कारण अंग्रेजो ने उन्हें गिरफ्तार कर लिया। अमृतसर में गिरफ्तारी के बाद मुकदमा चलाया गया। कोर्ट ने इन्हें 4 साल की सजा दे दी। जेल से छूटने के बाद पैतृक निवास सुनाम में रहने के लिए गये। ब्रिटिश पुलिस ने उनको परेशान करना शुरू किया। जिसके कारण अमृतसर आये। अमृतसर में एक भाड़े की दुकान खोली और एक पेन्टर का बोर्ड लगाया। मालिका नाम - राम मुहम्मद सिंह आजाद था।

अपने मिशन को अंजाम देने के लिए उधम सिंह ने विभिन्न नामों से अफ्रीका, नैरोब, ब्राजील और अमेरिका की यात्रा की। सन 1934 में उधम सिंह लंदन पहुंचे और वहां 9, एल्डर स्ट्रीट कमेर्शियल रोड पर रहने लगे। वहां उन्होंने यात्रा के उद्देश से एक कार खरीदी और साथ में अपना मिशन पूरा करने के लिए छह गोलियों वाली एक रिवाल्वर भी खरीद ली। वहाँ पर छिपकर भारतीयों के साथ रहने लगे। उन्होंने इनका हर सम्भव सहयोग किया। लन्दन में रहने के लिए एक होटल में वेटर का काम किया ताकि कुछ और पैसे इकट्ठे कर बन्दुक खरीदी जा सके। उनको अपना उद्देश्य पूरा करने में पूरे 21 साल लग गये फिर भी उनके मन में प्रतिशोध की ज्वाला कम नहीं हुई थी। 21 साल तक केवल अपने संकल्प को पूरा करने के लिए जीवित थे। 13 मार्च 1940 को लन्दन के एक शहर किंग्स्टन में जनरल डायर का एक बड़ा कार्यक्रम चल रहा था। उस कार्यक्रम में उधम सिंह पहुँचे और अपनी सीट से उठकर जनरल डायर पर ताबड़तोड़ तीन गोलियाँ चलाई जिसमें जनरल डायर की तत्काल मृत्यु हो गई। डायर को मारने के बाद भागने के बजाय उन्होंने एक ही वाक्य कहा था "आज मेरे 21 साल का पुराना संकल्प पूरा हो गया मैं अब एक मिनट जिन्दा नहीं रहना चाहता हूँ।" उन्होंने आत्मसमर्पण कर दिया क्योंकि जिस संकल्प को पूरा करने के लिए उन्होंने जीवन दाँव पर लगा दिया था वह पूरा हो गया। उधम सिंह को तुरंत गिरफ्तार कर अगले आदेश तक जेल में डाल दिया गया। डायर की मौत की जाँच के दौरान उधम सिंह ने जेल में 42 दिन तक भूख हड़ताल की थी। जिससे उन्हें जबरदस्ती भोजन दिया जाता था।

कानूनी कार्यवाई और फाँसी

जब डायर की मौत की जाँच शुरू हुई तो अंग्रेज अफसरों ने डायर को मारने का कारण पूछा, उन्होंने बताया "जनरल डायर ने मेरे देश के 3000 निर्दोष भारतवासियों की अकारण हत्या करा दी थी तभी मैंने जनरल डायर को मारने का संकल्प ले लिया था जिसे पूरा करने में मुझे 21 साल लग गए। मैं अब खुश हूँ क्योंकि मेरा संकल्प पूरा हो गया। मुझे मौत से कोई डर नहीं है। अपने देश के लिए मैं हँसते-हँसते जान दे दूँगा। मैंने अपने देशवासियों को अंग्रेजी राज में तड़पते हुए देखा है और उनके दर्द का विरोध करना मेरा कर्तव्य था। मुझे गर्व है कि मुझे अपनी मातृभूमि के लिये बलिदान होने का अवसर मिला है।" इस प्रकार उधम सिंह के बयानों के आधार पर उन्हें फाँसी की सजा सुनाई गयी। 31 जुलाई 1940 को उन्हें लन्दन की जेल में फाँसी दे दी गई और उसी जेल में उनके शव को दफन कर दिया गया।

भारत के लोगों को जब उधम सिंह के फाँसी की खबर लगी तो भारत के क्रांतिकारियों के मन में अंग्रेजों के प्रति विद्रोह और बढ़ गया और ज्वाला की तरह फैल गया। इन्हीं शहीदों के बलिदान के कारण उनकी मौत के केवल 7 वर्ष बाद भारत अंग्रेजों की गुलामी से आजाद हो गया। सन् 1974 में पंजाब के विधायक साधू सिंह थिंड के आग्रह पर उनकी अस्थियों को खोदकर भारत लाया गया। उनके अवशेषों को उनके जन्मस्थान पर अंतिम संस्कार किया गया और अस्थियों को सतलज नदी में प्रवाहित किया गया था। उनके योगदान को स्मरणीय बनाने के लिये उत्तराखंड राज्य के एक जिला का नाम उधम सिंह नगर रखा गया है। उनकी अस्थि विधायक संधू सिंह इग्लैंड से लाये थे और विमानतल पर उनकी अस्थि को श्रीमती इंदिरा गाँधी, श्री शंकर दयाल शर्मा, श्री जैल सिंह ने प्राप्त किया था।

कनकलता बरुआ

शिफॉन सरकार

अनेक बलिदानियों का बलिदान हमारी स्वतंत्रता की नींव का पत्थर है। उनके त्याग और बलिदान की बुनियाद पर ही स्वतंत्रता रूपी भवन खड़ा है। कनकलता बरुआ भारत की ऐसी ही शहीद बेटी थीं, जो भारतीय वीरांगनाओं की कतार में एक थी। मह. ज 18 वर्षीय कनकलता अन्य बलिदानी वीरांगनाओं से उम्र में छोटी भले ही रही हों, लेकिन त्याग एवं बलिदान में उनका कद किसी से कम नहीं था।

कनकलता बरुआ का जन्म 22 दिसंबर, 1924 को असम के बारंगबाड़ी गाँव में कृष्णकांत बरुआ के परिवार में हुआ था। कनकलता बचपन में ही अनाथ हो गई थी। कनकलता के पालन-पोषण का दायित्व उनकी नानी ने संभाला था। गरीबी के बावजूद कनकलता का झुकाव राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन की ओर होता गया।

बचपन से ही राष्ट्र भक्ति की भावना

मई 1931 ई. में गमेरी गाँव में रैयत सभा आयोजित की गई थी, उस समय कनकलता केवल सात साल की थी। फिर भी सभा में अपने मामा देवेन्द्रनाथ और यदुराम बोस के साथ उसमें भाग लिया था। सभा के अध्यक्ष प्रसिद्ध नेता ज्योति प्रसाद अगरवाला थे। ज्योति प्रसाद अगरवाला असम के प्रसिद्ध कवि थे और उनके द्वारा असमिया भाषा में लिखे गीत घर-घर में लोकप्रिय थे। अगरवाला के गीतों से कनकलता भी प्रभावित और प्रेरित हुई। इन गीतों के माध्यम से कनकलता के बाल-मन पर राष्ट्र-भक्ति का बीज अंकुरित हुआ।

स्वतंत्रता संग्राम में शामिल

सन् 1931 के रैयत अधिवेशन में भाग लेने वालों को राष्ट्रद्रोह के आरोप में बंदी बना लिया गया। इस घटना के कारण असम में क्रांति की आग चोरों ओर फैल गई। मुम्बई के काँग्रेस अधिवेशन में 8 अगस्त, 1942 को अँग्रेजों भारत छोड़ो प्रस्ताव पारित हुआ। यह ब्रिटिश के विरुद्ध देश के कोनेकोने में फैल गया। असम के शीर्ष नेता मुम्बई से लौटते ही पकड़कर जेल में डाल दिये गए। अंत में ज्योति प्रसाद आगरवाल ने नेतृत्व संभाला। उनके नेतृत्व में गुप्त सभा की गई। पुलिस के अत्याचार बढ़ गए और स्वतंत्रता सेनानियों से जेल भर गए। कई लोगों को पुलिस की गोली का शिकार बनना पड़ा। शासन् के दमन चक्र के साथ आंदोलन भी बढ़ता गया।

थाने पर तिरंगा फहराने का निर्णय

एक गुप्त सभा में 20 सितम्बर, 1942 ई. को तेजपुर की कचहरी पर तिरंगा फहराने का निर्णय लिया गया। उस समय तक कनकलता

करने नहीं आए हैं। हम तो थाने पर तिरंगा फहराकर स्वतंत्रता की ज्योति जलाने आए हैं। इसके बाद लौट जायेंगे।"

थाने के प्रभारी ने कनकलता से कहा कि यदि तुम लोग एक इंच भी आगे बढ़े तो गोलियों से उड़ा दिए जाओगे। इसके बावजूद भी कनकलता आगे बढ़ीं और कहा – "हमारी स्वतंत्रता की ज्योति बुझ नहीं सकती। तुम गोलियाँ चला सकते हो, पर हमें कर्तव्य विमुख नहीं कर सकते।" इतना कह कर वह ज्यों ही आगे बढ़ी, पुलिस ने जुलूस पर गोलियों की बौछार कर दी। पहली गोली कनकलताने अपनी छाती पर

विवाह के योग्य हो चुकी थीं। किन्तु वह अपने विवाह की अपेक्षा भारत की आज़ादी को अधिक महत्वपूर्ण मानती थीं। भारत की आज़ादी के लिए वह कुछ भी करने को तैयार थीं।

20 सितम्बर, 1942 के दिन तेजपुर से 82 मील दूर गहपुर थाने पर तिरंगा फहराने की योजना बनाई गई। कनकलता भी इसमें शामिल थी। कनकलता आत्म बलिदानी दल की सदस्या थीं। गहपुर थाने की ओर चारों दिशाओं से जुलूस उमड़ पड़ा था। दोनों हाथों में तिरंगा झंडा थामें कनकलता उस जुलूस का नेतृत्व कर रही थीं। जुलूस के नेताओं को संदेह हुआ कि कनकलता और उसके साथी कहीं भाग न जाए। संदेह को भाँप कर कनकलता शेरनी के समान गरज उठी "हम युवतियों को अबला समझने की भूल मत कीजिए। आत्मा अमर है, नाशवान है तो मात्र शरीर। अतः हम किसी से क्यों डरें?", "करेंगे या मरेंगे", "स्वतंत्रता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है", जैसे नारों से आकाश को चीरती हुई थाने की ओर बढ़ी।

आत्मबलिदानी जत्था थाने के करीब जा पहुँचा। पीछे से जुलूस के गगनभेदी नारों से आकाश गूँजने लगा। उस जत्थे के सदस्यों में थाने पर झंडा फहराने की होड-सी मच गई। हर एक व्यक्ति सबसे पहले झंडा फहराने को बेचैन था। थाने का प्रभारी पी.एम.सोम जुलूस को रोकने के लिए सामने आकर खड़ा हो गया। कनकलता से उसने कहा – "हमारा रास्ता मत रोकिए। हम आपसे संघर्ष

झेली। गोली बोगी कछारी नामक सिपाही ने चलाई थी। दूसरी गोली मुकुंद काकोती को लगी, जिससे उसकी तत्काल मृत्यु हो गई। इन दोनों की मृत्यु के बाद भी गोलियाँ चलती रहीं।

लेकिन युवकों के मन में स्वतंत्रता की अखंड ज्योति जल रही थी, जिसके कारण गोलियों की परवाह न करते हुए वे लोग आगे बढ़ते रहे। कनकलता गोली लगने पर गिर पड़ी, किन्तु उसके हाथ से तिरंगा नहीं झुका। उसका साहस और बलिदान देखकर युवकों का जोश और भी बढ़ गया। कनकलता के हाथ से तिरंगा लेकर गोलियों के सामने सीना तानकर वीर बलिदानी युवक आगे बढ़ते रहे, एक के बाद एक गिरते गए, किन्तु झंडे को न तो झुकने दिया न ही गिरने दिया। उसे एक के बाद दुसरे हाथ में थामते गए और अंत में रामपति राजखोवा ने थाने पर झंडा फहरा दिया।

शहीद वीरांगना का अंतिम संस्कार

शहीद मुकुंद काकोती के शव को सेज पर नगरपालिका के कर्मचारियों ने गुप्त रूप से दाह-संस्कार कर दिया किन्तु कनकलता का शव स्वतंत्रता सेनानी अपने कंधों पर उठाकर उसके घर तक ले जाने में सफल हो गए। उसका अंतिम संस्कार बांरगबाडी में ही किया गया। अपने प्राणों की आहुति देकर उसने स्वतंत्रता संग्राम में और अधिक जोश पैदा किया।

अशफ़ाक़ उल्ला खाँ

राजेश टमटा

भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम के एक प्रमुख क्रान्तिकारी थे। उन्होंने काकोरी काण्ड में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। राम प्रसाद बिस्मिल की भाँति अशफ़ाक़ उल्ला खाँ भी उर्दू भाषा के बेहतरीन शायर थे। उनका उर्दू तखल्लुम हसरत था। उर्दू के अतिरिक्त वे हिन्दी व अंग्रेजी में लेख एवं कवितायें भी लिखा करते थे। उनका पूरा नाम अशफ़ाक उल्ला खाँ वारसी हसरत था। भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम के सम्पूर्ण इतिहास में बिस्मिल और अशफ़ाक़ की भूमिका निर्विवाद रुप से हिन्दू-मुस्लिम एकता का अनुपम उदाहरण है।

जीवन परिचय

अशफ़ाक़ उल्ला खाँ का जन्म उतर प्रदेश के शहीदगढ़ शाहजहाँपुर में रेलवे स्टेशन् के पास स्थित कदनखैल जलालनगर मुहल्ले में 22 अक्टूबर 1900 को हुआ था। उनके पिता का नाम मोहम्मद शफीक उल्ला खाँ था। उनकी माँ का नाम मजहूरुन्निशाँ बेगम था। अशफ़ाक़ ने स्वयं अपनी डायरी में लिखा है कि जहाँ एक ओर उनके बाप-दादों के खानदान में एक भी ग्रेजुएट होने तक की तालीम न पा सका वहीं दूसरी ओर उनकी ननिहाल में सभी लोग उच्च शिक्षित थे। उनमें से कई तो डिप्टी कलेक्टर व एस जे एम (सब जुडीशियल मैजिस्ट्रेट) के ओहदों पर मुलाजिम भी रह चुके थे। 1857 के गदर में उन लोगों ने जब हिन्दुस्तान का साथ नहीं दिया तो जनता ने गुस्से में आकर उनकी आलीशान कोठी को आग के हवाले कर दिया था। वह कोठी आज भी पूरे शहर में जली कोठी के नाम से मशहूर है। बहरहाल अशफ़ाक़ ने अपनी क़ुरबानी देकर ननिहाल वालों के नाम पर लगे उस बदनुमा दाग को हमेशा - हमेशा के लिये धो डाला।

अशफ़ाक़ अपने भाई-बहनों में सबसे छोटे थे। सब उन्हें प्यार से अच्छू कहते थे। एक रोज उनके बड़े भाई रियासत उल्ला ने अशफ़ा.क को बिस्मिल के बारे में बताया कि वह बड़ा काबिल सख्श है और आला दर्जे का शायर भी, गोया आजकल मैनपुरी काण्ड में गिरफ्तारी की वजह से शाहजहाँपुर में नजर नहीं आ रहा। काफी अर्से से फरार है खुदा जाने कहाँ और किन हालात में बसर करता होगा। बिस्मिल उनका सबसे उम्दा क्लासफेलो है। अशफ़ाक़ तभी से बिस्मिल से मिलने के लिये बेताब हो गये। वक्त गुजरता रहा। 1920 में आम मुआफी के बाद राम प्रसाद बिस्मिल अपने वतन शाहजहाँपुर आये और घरेलू कारोबार में लग गये। अशफ़ाक़ ने कई बार बिस्मिल से मुलाकात करके उनका विश्वास अर्जित करना चाहा परन्तु कामयाबी नहीं मिली। चुनाँचे एक रोज रात को खन्नौत नदी के किनारे सुनसान जगह में मीटिंग हो रही थी अशफ़ाक़ वहाँ जा पहुँचे। बिस्मिल के एक शेर पर जब अशफ़ाक़ ने आमीन कहा तो बिस्मिल ने इन्हें पास बुलाकर परिचय पूछा। यह जानकर कि अशफ़ा.क़ उनके क्लासफेलो रियासत उल्ला का सगा छोटा भाई है और उर्दू जुबान का शायर भी है, बिस्मिल ने उससे आर्य समाज मन्दिर में आकर अलग से मिलने के लिए कहा। घर वालों के लाख मना करने पर भी अशफ़ाक़ आर्य समाज जा पहुँचे और राम प्रसाद बिस्मिल से काफी देर तक गुफ्तगू करने के बाद उनकी पार्टी मातृवेदी के एक्टिव मेंम्बर भी बन गये। यहीं से उनकी जिन्दगी का नया फलसफा शुरु हुआ। वे शायर के साथ-साथ कौम के खिदमतगार भी बन गये।

अहमदाबाद और गया काँग्रेस में भागीदारी

अशफ़ाक़ बहुत दूरदर्शी थें उन्होंने राम प्रसाद बिस्मिल को यह सलाह दिया कि क्रान्तिकारी गतिविधियों के साथ-साथ कांग्रेस पार्टी में भी अपनी पैठ बनाकर रखना हमारी कामयाबी में मददगार ही साबित होगा।

बहरहाल अशफ़ाक़ व बिस्मिल के साथ शाहजहाँपुर के और भी कई नवयुवक कांग्रेस में शामिल हुए और पार्टी को कौमी ताकत अता की। 1921 की अहमदाबाद कांग्रेस में राम प्रसाद बिस्मिल व प्रेमकृष्ण खन्ना के साथ अशफ़ाक़ भी शामिल हुए। अधिवेशन में उनकी मुलाकात मौलाना हसरत मोहानी से हुई जो कांग्रेस के वरिष्ठ शरमायेदारों में शुमार किये जाते थे। मौलाना हसरत मोहानी द्वारा प्रस्तुत पूर्ण स्वराज के प्रस्ताव का जब गाँधीजी ने विरोध किया तो शाहजहाँपुर के कांग्रेसी स्वयंसेवकों ने गाँधीजी की डटकर मुखालफत की और खूब हंगामा मचाया। आखिरकार गांन्धी जी को न चाहते हुए भी वह प्रस्ताव स्वीकार करना ही पड़ा। इसी प्रकार दिसम्बर 1922 को गया कांग्रेस में भी नवयुवकों द्वारा गाँधीजी की जमकर खिंचायी की गयी। इसमें बंगाल, बिहार व उतर प्रदेश के नवयुवक एक हो गये। उन सबका गान्धी से एक ही सवाल था - "आपने किसे पूछकर असहयोग आन्दोलन वापस लिया?"

एच.आर.ए. का गठन

1922 की गया कांग्रेस के बाद पार्टी में दो दल बन गये एक धनाढ्य लोगों का दूसरा आम तबके से आये हुए नवयुवकों का। पहले वाले दल ने 01 जनवरी 1923 को स्वराज पार्टी बना ली दूसरे दल ने क्रान्तिकारी पार्टी के गठन का मन बना लिया। बंगाल के कुछ नवयुवक सीधें शाहजहाँपुर आकर मैनपुरी षड़यन्त्र के अनुभवी क्रान्तिकारी पण्डित राम प्रसाद बिस्मिल से मिले और उनसे नयी पार्टी के गठन में सहयोग करने का आग्रह किया। बिस्मिल उन दिनों सिल्क की साड़ियों के व्यापार में उलझे हुए थे उनके पास समय नहीं था। इस पर अशफ़ाक़ ने उन्हें समझाया और अपनी ओर से पूरा सहयोग करने का वचन दिया। उसके बाद ही बिस्मिल ने अपने साझीदार बनारसी लाल को सारा कारोबार सौंप दिया और पूरे मन से अशफ़ाक़ और बिस्मिल क्रान्तिकारी पार्टी के काम में जुट गये। पार्टी की ओर से 01 जनवरी 1925 को अंग्रेजी में छापे गये घोषणा पत्र **दि रिवोलूशनरी** को पूरे उत्तर प्रदेश के प्रत्येक जिले तक पहुँचाने में अशफ़ाक की सराहनीय भूमिका को देखते हुए एच.आर.ए. की केन्द्रीय कार्यकारिणी के सदस्य योगेश चन्द्र चटर्जी ने अशफ़ाक को बिस्मिल का सहकारी (लेफ्टिनेण्ट) मनोनीत किया और प्रदेश की जिम्मेदारी इन दोनों के कन्धों पर डाल कर स्वयं बंगाल चले गये।

काकोरी काण्ड में अशफ़ाक की भूमिका

बंगाल में शचीन्द्रनाथ सान्याल और योगेश चन्द्र चटर्जी जैसे दो प्रमुख व्यक्तियों के गिरफ्तार हो जाने पर हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एसोसियेशन् का पूरा दारोमदार बिस्मिल के कन्धों पर आ गया। इसमें शाहजहाँपुर से प्रेम कृष्ण खन्ना, ठाकुर रोशन सिंह के अतिरिक्त अशफ़ाक उल्ला खाँ का योगदान सराहनीय रहा। जब

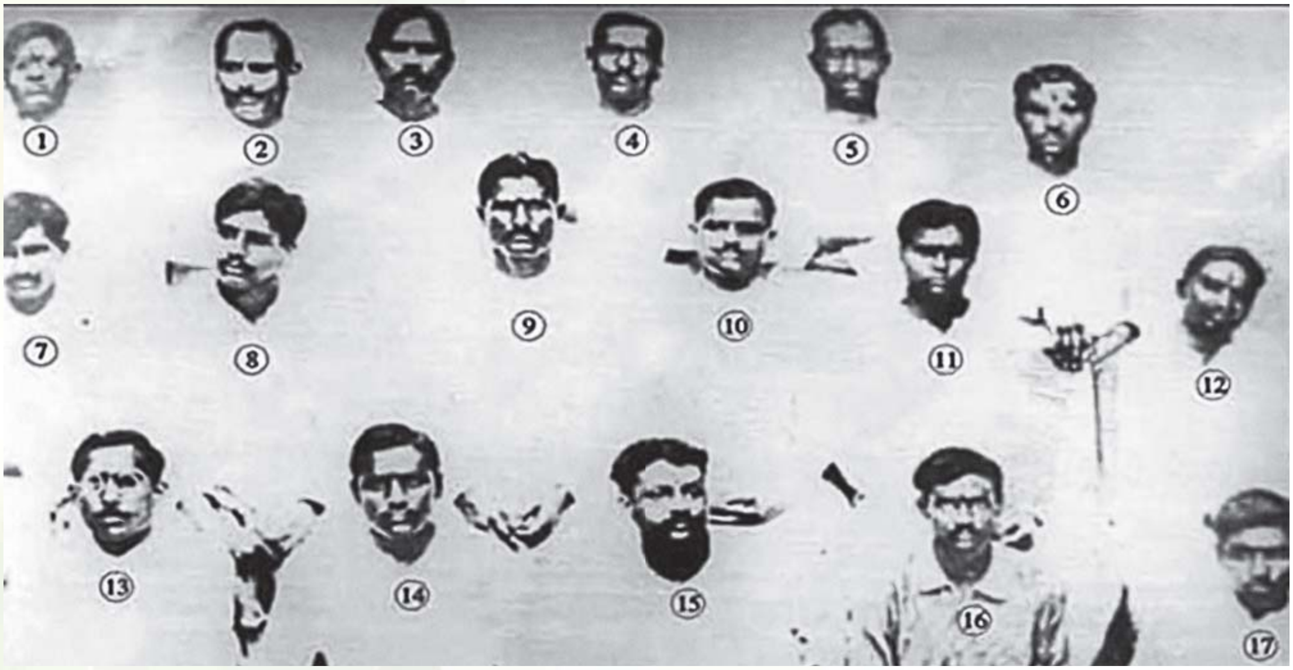

काकोरी काण्ड के क्रान्तिकारी - (1) योगेशचन्द्र चटर्जी, (2) प्रेमकृष्ण खन्ना, (3) मुकुन्दी लाल, (4) विष्णूशरण दुब्लिश, (5) सुरेशचन्द्र भट्टाचार्य, (6) रामकृष्ण खत्री, (7) मन्मथनाथ गुप्त, (8) राजकुमार सिन्हा (9) ठाकुर रोशनसिंह, (10) पं रामप्रसाद बिस्मिल, (11) राजेन्द्रनाथ लाहिडी, (12) गोविन्दचरण कार (13) रामदुलारे त्रिवेदी, (14) रामनाथ पाण्डेय, (15) शचीन्द्रनाथ सान्याल, (16) भूपेन्द्रनाथ सान्याल, (17) प्रणवेश कुमार चटर्जी

आयरलैण्ड के क्रान्तिकारियों की तर्ज पर जबरन धन छीनने की योजना बनायी गयी तो अशफ़ाक़ ने अपने बड़े भाई रियासत उल्ला खाँ की लाइसेंसी बन्दूक और दो पेटी कारतूस बिस्मिल को उपलब्ध कराये ताकि धनाढ्य लोगों के घरों में डकैतियाँ डालकर पार्टी के लिये पैसा इकट्ठा किया जा सके। किन्तु जब बिस्मिल ने सरकारी खजाना लूटने की योजना बनायी तो अशफ़ाक़ ने अकेले ही कार्यकारिणी मीटिंग में इसका खुलकर विरोध किया। उनका तर्क था कि अभी यह कदम उठाना खतरे से खाली न होगा, सरकार हमें नेस्तनाबूद कर देगी। इस पर जब सब लोगों ने अशफ़ाक़ के बजाय बिस्मिल पर खुल्लमखुल्ला यह फब्ती कसी - "पण्डित जी, देख ली इस मियाँ की करतूत। हमारी पार्टी में एक मुस्लिम को शामिल करने की जिद का असर अब आप ही भुगतिये, हम लोग तो चले।" इस पर अशफ़ाक़ ने यह कहा - "पण्डित जी हमारे लीडर हैं हम उनके बराबर नहीं हो सकते। उनका फैसला हमें मन्जूर है। हम आज कुछ नहीं कहेंगे लेकिन कल सारी दुनिया देखेगी कि एक पठान ने इस एक्शन् को किस तरह अन्जाम दिया?" और वही हुआ अगले दिन 9 अगस्त 1925 की शाम काकोरी स्टेशन् से जैसे ही ट्रेन आगे बढी, राजेन्द्रनाथ लाहिड़ी ने चेन खींची, अशफाक ने ड्राइवर की कनपटी पर माउजर रखकर उसे अपने कब्जे में लिया और राम प्रसाद बिस्मिल ने गार्ड को जमीन पर औंधे मुँह लिटाते हुए खजाने का बक्सा नीचे गिरा दिया। लोहे की मजबूत तिजोरी जब किसी से नहीं टूटी तो अशफाक़ ने अपना माउजर मन्मथनाथ गुप्त को पकड़ाया और हथौड़ा लेकर पूरी ताकत से तिजोरी पर प्रहार किए। अशफाक के तिजोरी तोड़ते ही सभी ने उनकी फौलादी ताकत का नजारा देखा। वरना यदि तिजोरी कुछ देर और न टूटती और लखनऊ से पुलिस या आर्मी आ जाती तो मुकाबले में कई जानें जा सकती थीं, फिर उस काकोरी काण्ड को इतिहास में कोई दूसरा ही नाम दिया जाता।

काकोरी कांड में इस्तेमाल की गई थी यह पिस्तौल

काकोरी कांड की स्मृति में भारत सरकार द्वारा जारी डाक टिकट

गिरफ्त से बाहर

26 सितम्बर 1925 की रात जब पूरे देश में एक साथ गिरफ्तारियाँ हुई अशफ़ाक़ पुलिस की आँखों में धूल झोंक कर फरार हो गये। पहले वे नेपाल गये कुछ दिन वहाँ रहकर कानपुर आ गये और गणेशशंकर विद्यार्थी के प्रताप प्रेस में 2 दिन रुके। वहाँ से बनारस होते हुए बिहार के एक जिले डाल्टनगंज में कुछ दिनों नौकरी की परन्तु पुलिस को इसकी भनक लगने से पहले उत्तर प्रदेश के शहर कानपुर वापस आ गये। विद्यार्थी जी ने उन्हें अपने पास से कुछ रुपये देकर भोपाल उनके बड़े भाई रियासत उल्ला खाँ के पास भेज दिया। कुछ समय वहाँ रहकर अशफ़ाक़ राजस्थान गये और अपने भाई के मित्र अर्जुनलाल सेठी के घर ठहरे। सेठी जी की लड़की उन पर फिदा हो गयी और उनके सामने शादी का प्रस्ताव पेश कर दिया। आखिरकार एक रात वे वहाँ से भी रफूचक्कर हो गये और बिहार के उसी जिले डाल्टनगंज पहुंच कर अपनी पुरानी जगह नाम बदल कर नौकरी शुरु कर दी। एक दिन भेद खुल गया तो अशफ़ाक़ ट्रेन पकड़ कर दिल्ली चले गये और अपने जिले शाहजहाँपुर के ही मूल निवासी एक पुराने दोस्त के घर पर ठहरे। यहाँ भी वही मुसीबत अशफाक के पीछे लग गया। जिसके यहाँ ठहरे हुए थे उस दोस्त की लड़की ने भी अशफ़ाक़ पर डोरे डालने शुरु कर दिये। हालात से आजिज आकर अशफ़ाक़ ने पासपोर्ट बनवा कर किसी प्रकार दिल्ली से बाहर विदेश जाकर लाला हरदयाल से मिलने का मन्सूबा बनाया ही था कि किसी भेदिये की खबर पाकर दिल्ली खुफिया पुलिस के उपकप्तान इकरामुल हक ने उन्हें धर दबोचा। ऐसा कहा जाता है कि उस दोस्त ने ही अशफाक़ को पकड़वाने में पुलिस की सहायता की थी।

काकोरी केस के हालात

यह एक ऐतिहासिक सच्चाई है कि काकोरी काण्ड का फैसला 6 अप्रैल 1926 को सुना दिया गया था। अशफ़ाक़ उल्ला खाँ और शचीन्द्रनाथ बख्शी को पुलिस बहुत बाद में गिरफ्तार कर पायी थी अतः स्पेशल सेशन् जज जे.आर.डब्लू. बैनेट की अदालत में 7 दिसम्बर 1926 को एक पूरक मुकदमा दायर किया गया। मुकदमें के मजिस्ट्रेट ऐनुद्दीन ने अशफ़ाक़ को सलाह दी कि वे किसी मुस्लिम वकील को अपने केस के लिये नियुक्त करें किन्तु अश. फाक़ ने जिद करके कृपाशंकर हजेला को अपना वकील चुना। इस पर एक दिन सी.आई.डी. के पुलिस कप्तान खानबहादुर तसद्धुक

हुसैन ने जेल में जाकर अशफ़ाक़ से मिले और उन्हें फाँसी की सजा से बचने के लिये सरकारी गवाह बनने की सलाह दी। जब अशफ़ाक़ ने उनकी सलाह को तवज्जो नहीं दी तो उन्होंने एकान्त में जाकर अशफ़ाक़ को समझाया - "देखो अशफ़ाक़ भाई, तुम भी मुस्लिम हो और अल्लाह के फजल से मैं भी एक मुस्लिम हूँ इस बास्ते तुम्हें आगाह कर रहा हूँ। राम प्रसाद बिस्मिल और अन्य सारे लोग हिन्दू हैं। ये यहाँ हिन्दू सल्तनत कायम करना चाहते हैं। तुम कहाँ इन काफिरों के चक्कर में आकर अपनी जिन्दगी जाया करने की जिद पर तुले हुए हो। मैं तुम्हें आखिरी बार समझाता हूँ, मियाँ हूँ। मान जाओ, फायदे में रहोगे।"

इतना सुनते ही अशफ़ाक़ की त्योरियाँ चढ़ गयीं और गुस्से में डाँटकर बोले - "खबरदार। जुबान सम्हाल कर बात कीजिये। पण्डित जी को आपसे ज्यादा मैं जानता हूँ। उनका मकसद यह बिल्कुल नहीं है। और अगर हो भी तो हिन्दू राज्य तुम्हारे इस अंग्रेजी राज्य से बेहतर होगा। आपने उन्हें काफिर कहा इसके लिये मैं आपसे यही दरख्वास्त करूँगा कि मेहरबानी करके आप अभी इसी वक्त यहाँ से तशरीफ ले जायें वरना मेरे ऊपर दफा 302 का एक केस और कायम हो जायेगा।"

इतना सुनते ही कप्तान साहब वहाँ से चुपचाप चले गए। बहरहाल 13 जुलाई 1927 को पूरक मुकदमें का फैसला सुना दिया गया - दफा 120 (बी) व 121 (ए) के अन्तर्गत उम्र-कैद और 396 के अन्तर्गत सजाये-मौत दण्ड दिया गया।

तमाम अपीलों व दलीलों के बाद भी उनके फांसी की सज़ा बरकरार रही। आखिरकार 19 दिसम्बर 1927 की तारीख मुकर्रर हुई और इसकी सूचना चारो जेलों को भेज दी गयी।

विरादराने-वतन के नाम

जुमेरात, 15 दिसम्बर 1927 की शाम फैजाबाद जेल की काल कोठरी से अश.फाक़ उल्ला खाँ ने अपना यह आखिरी पैगाम हिन्दुस्तान के अवाम के नाम लिखकर उर्दू भाषा में भेजा था। उनका मकसद यह था कि मुस्लिमसमुदाय के लोग इस पर खास तवज्जो अता करें। एक पुलिस अधिकारी पं० विद्यार्णव शर्मा की पुस्तक युग के देवता और अशफ़ाक़ में पृष्ठ संख्या 172 से 178 तक यह पूरा सन्देश दिया हुआ है।

फैजाबाद जेल, शहीद स्मारक, अशफाक उल्ला खाँ

"गवर्नमेण्ड के खुफिया एजेण्ट मजहबी बुनियाद पर प्रोपेगण्डा फैला रहे हैं। इन लोगों का मक़सद मजहब की हिफाजत या तरक्की नहीं है, बल्कि चलती गाड़ी में रोड़ा अटकाना है। मेरे पास वक्त नहीं है और न मौका है कि सब कच्चा चिट्ठा खोल कर रख देता, जो मुझे अय्यामे-फरारी (भूमिगत रहने) में और उसके बाद मालूम हुआ।"

उन्होंने यह कहकर वर्तमान हालात की भविष्य-वाणी बहुत पहले सन् 1927 में ही कर दी थी।

***"जुबाने-हाल से अशफ़ाक़ की तुर्बत ये कहती है,
मुहिब्बाने-वतन ने क्यों हमें दिल से भुलाया है?
बहुत अफसोस होता है बड़ी तकलीफ होती है,
शहीद अशफ़ाक़ की तुर्बत है और धूपों का साया है।"***

गनीमत है गणेशशंकर विद्यार्थी ने 200 रुपये का मनीआर्डर भेजकर अशफ़ाक़ की मजार पर छत डलवा कर उसे धूप के साये से बचा लिया।

लक्ष्मी सहगल

डॉ साधना कोली

लक्ष्मी सहगल के बचपन का नाम लक्ष्मी स्वामीनाथन था। इनके जन्म 24 अक्टूबर सन् 1914 को एस. स्वामीनाथन के परिवार में हुआ। इनके पिताजी मद्रास उच्च न्यायालय में फ़ौजदारी के वकील थे। उनकी माता का नाम ए.वी. अमुकुट्टी था जो सामाजिक कार्य करने के कारण और स्वतंत्रता कार्यकर्ता के रूप में अम्मू स्वीनाथन के नाम से प्रसिद्ध थी। इनका परिवार कुलीन नायर परिवार था जिसे केरल के पालघाट क्षेत्र में ओंकरा परिवार के रूप में जाना जाता था। लक्ष्मी सहगल ने प्रारम्भिक शिक्षा ग्रहण के बाद उच्च शिक्षा के लिए मद्रास मेडिकल कॉलेज में दाखिला लिया और मेडिसीन में एम.बी.बी.एस की डिग्री वर्ष 1938 में प्राप्त किया। इसके अलावा उन्होंने गायकोनोलॉजी और आबसटेटिक्स में डिप्लोमा किया। शिक्षा पूर्ण करने के उपरांत चिकित्सक के रूप में उन्होंने चेन्नई के ट्रिप्लीकेन में स्थित सरकारी अस्पताल (कस्तूरबा गाँधी अस्पताल) में नौकरी आरम्भ किया।

उनका विवाह विमान चालक श्री पी.के.एन राव से हुआ था। शादी के कुछ समय बाद अनबन होने लगी जिसके कारण यह शादी असफल हो गई। सन् 1940 में वह सिंगापुर गई। सिंगापुर में रहते हुए उनकी मुलाकात सुभाष चंद्र बोस की आजाद हिन्द फौज के कुछ सदस्यों से हुई। उनके सम्पर्क में आने के कारण इनके भीतर देश की स्वतंत्रता के भाव जाग उठे। इन्होंने राष्ट्र सेवा के लिए कार्य करने का निर्णय ले लिया। उसी समय भारत से विस्थापित मजदूर सिंगापुर आ रहे थे। उनकी गरीबी देखकर और उनकी जरूरतों का ध्यान रखते हुए लक्ष्मी स्वामीनाथन ने एक दवाखाना उनके लिए खोला। उसी समय वह राष्ट्र के स्वतंत्रता सेनानीयों के नियमित सम्पर्क में रहने लगी और भारतीय स्वतंत्रता लीग में सक्रिय भूमिका निभाने में शामिल हो गई।

द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान अग्रेजों ने जापानी सेनाओं के सामने सन् 1942 में आत्मसमर्पण कर दिया। इस युद्ध में अनेकों सैनिक घायल हो गये थे। डॉ. लक्ष्मी स्वामीनाथन ने घायल युद्ध बंदियों की सेवा चिकित्सक के रूप में प्रदान किया। घायल सैनिको में से अनेकों ने इच्छा जाहिर किया कि यदि वे स्वस्थ हो जाएँगे तो आजाद हिन्द फौज के लिए काम करना पसंद करेंगे। उस समय सिंगापुर में अनेकों राष्ट्रवादी भारतीय कार्य कर रहे थे। जिसमें श्री के.पी. कैशव मेनन, श्री एस.सी गुहा और श्री एन.राघवन मुख्य थे। इन्होंने काउंसिल आफ एक्शन् का गठन किया। जिसका नाम अँग्रेजी में इंडियन नेशनल आर्मी या हिन्दी में आजाद हिन्द फौज नाम रखा था। सिंगापुर, जापान के कब्जे में आ जाने के बाद जापान सरकार की ओर से कोई पहल सिंगापुर के प्रशासन् के बारे में नहीं हो रही थी। आजाद हिन्द फौज की सक्रियता को कायम रखने के लिए जापान सरकार ने कोई आदेश नहीं दिया कि जापानी सेनाएं भारत की स्वतंत्रता में शामिल होगी। ऐसी हालात में सुभाष चन्द्र बोस 02 जुलाई 1943 को सिंगापुर पहुंचे। कुछ दिनों बाद अपने सभी सार्वजनिक बैठकों में सुभाष चन्द्र बोस ने अपनी प्रतिबद्धता जाहिर किया कि वह महिला सेना की टुकड़ी खड़ा करना चाहते हैं जो भारत की स्वतंत्रता के लिए काम करेंगी।

सुभाष चन्द्र बोस के भाषणों का असर सिंगापुर निवासियों पर होने लगा था। डॉ. लक्ष्मी स्वामीनाथन ने सुना कि सुभाष चन्द्र बोस महिलाओं का सैनिक संगठन बनाना चाहते हैं। वह नेताजी सुभाष चन्द्र बोस से मिलने के लिए प्रयास करने लगीं। एक दिन उनकी मुलाकात सुभाष चन्द्र बोस से हुई। नेताजी डा. लक्ष्मी स्वामीनाथन से बहुत प्रभावित हुए और उन्होंने लक्ष्मी स्वामीनाथन को आदेश दिया कि झाँसी की रानी रेजीमेन्ट के नाम पर एक महिला संगठन संगठित करें। नेताजी के भाषण का प्रभाव सिंगापुर में बसे भारतीयों पर हुआ जिसके कारण अनेक महिलाओं ने जोश के साथ महिला ब्रिगेड में शामिल होना आरम्भ कर दिया। झाँसी की रानी रेजीमेंट का मुखिया डा. लक्ष्मी स्वामीनाथन को नेताजी सुभाष चन्द्र बोस ने नियुक्त किया। डा. लक्ष्मी स्वामीनाथन से डॉ. की जगह कैप्टन लक्ष्मी स्वामीनाथन के नाम पर रखा गया। यह नाम उनके जीवन पर्यंत जुड़ा रहा और उनकी अलग पहचान बन गया।

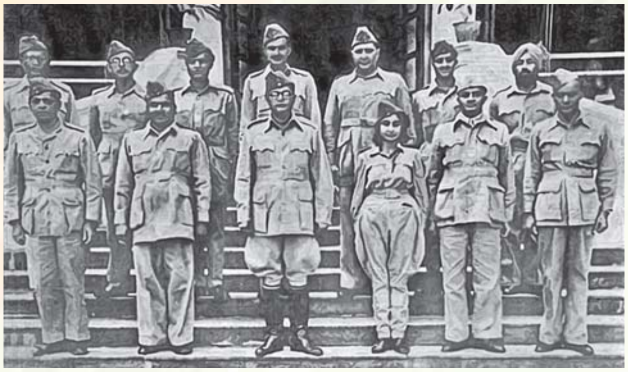

नेताजी सुभाषचंद्र बोस और आईएनए सदस्यों के साथ कैप्टन लक्ष्मी सहगल

द्वितीय विश्वयुद्ध जारी था और जापानी सेनाएँ सिंगापुर से आगे की ओर लगातार बढ़ रही थी। बर्मा में अग्रेजों को हराने के बाद जापानी सेनाएँ भारत के सीमावर्ती राज्यों में घुसने लगी इनके साथ ही आजाद हिन्द फौज की पुरुष एव महिला सेना भी आगे बढ़ रही थी। दिसम्बर 1944 में बर्मा से आगे बढ़ते हुए जापानी सेना के साथ आजाद हिन्द फौज मार्च 1945 में भारतीय सीमा में प्रवेश करने वाली थी। उसी समय ब्रिटिश सेना ने जापानी सेना का भयंकर विरोध किया जिसके कारण सेना आगे नहीं बढ़ सकी। आजाद हिन्द फौज के नेतृत्व ने निर्णय किया कि पीछे हट लिया जाय जब तक कि जापानी सेनाएँ इम्फाल में प्रवेश नहीं करती हैं। जापानी सेनाओं के साथ आजाद हिन्द फौज की महिला ब्रिगेड आगे बढ़ रही थी। मई 1945 में कैप्टन लक्ष्मी स्वामीनाथन को ब्रिटिश सेना ने बर्मा में गिरफ्तार कर लिया और मार्च 1946 तक कैद में रखा। मार्च 1946 के बाद उनको भारत भेजा गया।

उस समय दिल्ली में आजाद हिन्द फौज के शीर्ष सेना नायकों पर मुकदमा चलाया गया। द्वितीय युद्ध के दौरान अमेरिका के नेवल बेस पर्ल हार्बर पर जापान ने हमला कर दिया जिसके कारण अमेरिका इंग्लैंड के साथ हो गया और अमेरिका नें 1945 में जापान के शहर हिरोशिमा तथा नागासाकी पर एटम बमों की बरसात कर दी जिसके कारण लाखों लोग मारे गये। जापान सरकार अपने जन धन के क्षति को देखते हुए ब्रिटिश सेनाओं के सामने आत्मसमर्पण कर दिया। जर्मनी द्वारा हमला किये जाने के कारण रूस भी द्वितीय विश्वयुद्ध में शामिल हो गया और जर्मनी के विरुद्ध लड़ने लगा। युद्ध का रुख ध्रुवीय ग्रहों के विरुद्ध जाता देखकर जर्मनी में हिटलर ने आत्महत्या कर लिया और इटली के शासक मुसोलिनी को गिरफ्तार कर लिया गया। द्वितीय विश्व युद्ध में इंग्लैंड की आर्थिक हालत खराब हो गई और अग्रेंजो नें डर कर भारत को 15 अगस्त 1947 को देश स्वतंत्र कर दिया।

कैप्टन लक्ष्मी स्वामीनाथन ने लाहौर में मार्च 1947 में प्रेम कुमार सहगल से दूसरा विवाह किया। बटवारे के कारण कानपुर में आकर रहने लगी। विवाह के पश्चात कानपुर में रहते हुए कैप्टन लक्ष्मी सहगल ने दवाखाना खोला। बटवारे के कारण बहुत बडी संख्या में शरणार्थी लोग पाकिस्तान से भारत आ रहे थे। उनकी चिकित्सा की व्यवस्था कैप्टन लक्ष्मी सहगल ने अपनी ज़िम्मेदारी समझते हुए हर सम्भव मानवीय सहायता किया। उनके परिवार में दो पुत्रियाँ हैं जिनका नाम क्रमशः सुभाषिनी अली और अनिशा पूरी है। बड़ी बेटी सुभाषिणी अली कम्युनिष्ट पार्टी की प्रसिद्ध नेता तथा श्रमिक कार्यकर्ता हैं। सुभाषिणी अली के अनुसार उनके पिताजी श्री प्रेमकुमार सहगल नास्तिक थे। फिल्म निर्माता शाद अली उनके नाती हैं। वर्ष 1971 में कैप्टन लक्ष्मी सहगल भारतीय क्म्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी) में शामिल हुई और राज्य सभा में पार्टी का प्रतिनिधित्व किया। उसी वर्ष बंगालदेश संकट के समय बांगलादेश से कलकता आने वाले शरणार्थियों के लिए रिलीफ़ कैंप लगाया और शरणार्थियों की चिकित्सकीय सेवा की।

वर्ष 1981 ऑल इंडिया डेमोक्रेटिक वुमेन्स एसोसिएशन् संगठन की वह संस्थापक सदस्य थी। बाद में इसकी अनेक क्रियाकल्पो और अभियानों का नेतृत्व किया। वर्ष 1984 में भोपाल में यूनियन कारबाइड कम्पनी में गैस रिसाव की घटना हुई थी जिसमें लाखो लोग प्रभावित हुए थे और हजारों की जान चली गई थी। ऐसे संकट की घड़ी में कैप्टन लक्ष्मी सहगल ने प्रभावित लोगों को चिकित्सीय सेवा दल का गठन किया था। 31 अक्टूबर 1984 को तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदीरा गाँधी की हत्या उनके सिक्ख अंगरक्षक ने कर दिया था जिसके कारण देश भर में सिक्खो के विरुद्ध दंगे शुरू हो गए। उनको जान माल का नुकसान उठाना पड़ा। उस समय कानपुर शहर दंगे से बुरी तरह से प्रभावित था क्योकि वहाँ सिक्खो की बड़ी आबादी तथा व्यवसाय में लगे लोग रहते हैं। शांति स्थापित करने का प्रयास उन्होंने आरम्भ किया था।

बंगलोर में वर्ष 1996 में मिस वर्ल्ड कम्पीटेशन् का आयोजन हो रहा था जिसका विरोध करने के कारण कैप्टन लक्ष्मी सहगल को गिरफ्तार किया गया था। उनका मानना था की यह भारतीय संस्कृति के खिलाफ है। वर्ष 2002 में राष्ट्रपति उम्मीदवार के रूप में चार वामपंथी दलों जैसे कम्यूनिस्ट पार्टी ऑफ इंडिया, कम्यूनिस्ट पार्टी ऑफ इंडिया (मार्क्सवादी) रिवोलुशनरी सोसलिस्ट पार्टी, और आल इंडिया फारवर्ड ब्लॉक की ओर से उम्मीदवार नामित की गई थी। वह डॉ. ए.पी.जे अब्दुल कलाम की एक मात्र प्रतिद्वंदी उम्मीदवार थी। इसमें विजय डॉ कलाम साहब को मिली थी। वर्ष 2006 तक जब उनकी उम्र 92 थी, वह अपने कानपुर के निवास पर नियमित रूप से क्लीनिक में मरीजों को देखती थी। उनके राष्ट्रीय और सामाजिक कार्यों की महत्ता को ध्यान रखते हुए तत्कालीन राष्ट्रपति श्री के.आर. नारायण ने पद्मभूषण पुरस्कार से सम्मानित किया। 19 जुलाई 2012 को उनके निवास पर सबेरे 11.20 बजे दिल का दौरा पड़ने से उनका देहांत हो गया। उन्होंने अपनी वसियत में लिखा था कि मृत्यु पश्चात मेरा शरीर कानपुर मेडिकल कालेज को दानकर दिया जाय। उनकी इच्छा के अनुसार शरीर दानकर दिया गया। भारत सरकार तथा उत्तर प्रदेश सरकार ने प्रस्ताव किया है कि उनके योगदान को सम्मान प्रदान करने के लिए कानपुर देहात में बनने वाले विमान तल का नाम उनके नाम पर रखा जाय।

बाबा राघव दास

रामप्रीत यादव

बाबा राघव दास को पुर्वांचल का गाँधी माना जाता है। इनका जन्म 12 दिसम्बर 1896 को पुणें में हुआ था। इनके पिता उस समय सम्पन्न थे क्योंकि वह व्यापारी थे। इनके परिवार में चार भाई तथा तीन बहने थीं।

उनके पिता का नाम शेराप्पा तथा माताजी का नाम गीता था। उनके बचपन का नाम राघवेन्द्र था। बचपन में वर्ष 1897 में पूना में प्लेग की महामारी फैली थी। प्लेग की चपेट में बहुत से लोग मारे गये जिसमें राघवेन्द्र के माता पिता के साथ इनको छोड़कर सभी स्वर्गवासी हो गए। ब्रिटिश सत्ता के अधीन भारतीय लोगों को बचाने के लिए सरकार ने समुचित व्यवस्था नहीं किया। सरकारी तंत्र में भारतीय लोगों के प्रति संवेदना की कमी थीं। ब्रिटिश लोग मानवता दिखाने के बजाय हर तरह से शोषण और प्रताड़ित करने के लिए नया बहाना ढूंढते रहते थे। राघवेन्द्र ने मुम्बई से वर्ष 1913 में एफ-ए-की परीक्षा पास किया था। उसी वर्ष एक सच्चे गूरू की तलाश में वह महाराष्ट्र छोड़कर प्रयाग, मथुरा, होते हुए काशी पँहुचे। उस समय इनकी उम्र 17 वर्ष थी। योग की इच्छा रखने के कारण वह गुरू की तलाश में थे। काशी से आगे बढ़ते हुए वह गाजीपूर पँहुचे। वहाँ इनकी मुलाकात मौनीबाबा से हुई। उनसे राघवेन्द्रजी ने हिन्दी सीखी। वहाँ से सच्चे गुरू की तलाश पूरी करने की इच्छा से आगे बढ़ते हुए वह देवरिया पँहुचे। पहले यह जिला गोरखपुर के अंतर्गत था। देवरिया से 28 किलोमीटर दूर दक्षिण बरहज नाम का एक पुराना बाजार है। वहाँ इनकी मुलाकात गोगीराज अनंत महाप्रभु से हुई। उनके आध्यात्म ज्ञान से राघवेन्द्र बहुत प्रभावित हुए और अपना गुरू मानकर उनके आदेशों का पालन करने लगे। अपने जीवन की कर्मभूमि बरहज क्षेत्र को बनाया।

सन् 1921 में महात्मा गाँधी ने जागरुकता फैलाने के लिए गोरखपुर का दौरा किया था। उस समय राघवेंद्र बरहज से चलकर गोरखपुर पँहुचे और गाँधीजीसे मुलाकात किये। गाँधीजी के कार्यक्रम को अपने बरहज क्षेत्र में लागू करना वह अपना कर्तव्य मानते थे। गाँधीजीने समाज के दलित वर्ग को उपर उठाने के लिए कार्य करने का निर्देश दिया। वह दांडी मार्च में भी उनके साथ थे। वर्ष 1931 में गाँधीजी के नमक सत्याग्रह तथा दांडीमार्च को सफल बनाने के लिए राघवदासजी ने देवरिया से पड़रौना, बसंतपुर, धुसी तक मार्च किया था। उसी समय राजनीतिक रूप से अनेक घटनाएँ अलग-अलग क्षेत्रों में हो रही थी। वर्ष 1944 में उनको गिरफ्तार किया गया और २ साल की सजा हो गई। उनके जीवनकाल में उनको दस बार जेल की सजा हुई थी। स्वतंत्रता के बाद देश में पहली बार विधानसभा का चुनाव हुआ। बरहज विधानसभा चुनाव क्षेत्र से काँग्रेस के टिकट पर वह चुनाव में उतारे गए। उनका समर्थन सरदार पटेल, मोहसीना किदवई और गोविन्द बल्लभ पंत ने किया था जबकि उनके सामने प्रसिद्ध व्यक्ति आचार्य नरेन्द्र देव विरोधी उम्मीदवार के रूप में थे। चुनाव में विजयश्री राघव दास को मिली। उनका जीवन विधायक बनने के बाद भी समाजसेवी तथा सरल रहा।

वर्ष 1947 से 1957 के दौरान उन्होंने स्वयं को, ग्राम उद्योग की स्थापना, खादी के अनुसंधान, गीता रामायण अन्वेषण, हरिजन उत्थान, कुष्ठ निवारण और सेवा, गौमाता की सेवा और बिनोबा भावे द्वारा चलाए जा रहे भूदान आन्दोलन के लिए समर्पित कर दिया।

सन् 1950 में गाँव में तेल पेरने के लिए कोल्हू चलते थे। इस व्यवसाय में समाज का एक वर्ग कार्य करता था। सरकार ने कोल्हू पर कर लगाया था। इसे समाप्त करने के लिए राघवदास ने आंदोलन किया और कर प्रणाली को बंद कराया।

वर्ष 1951 में राघव दासजी ने गोरखपुर में कुष्ठसेवा आश्रम स्थापित किया। सन् 1955 में विनोबा भावे के साथ भूदान के लिए पैदल

मार्च निकाला था इसके लिए 11 साहित्यिक/सांस्कृतिक संस्थाओं से त्याग पत्र दे दिये थे। वर्ष 1957 में, मेसर सर्वोदय सम्मेलन का आयोजन कराए थे। बरहज में रहते हुए उन्होंने कई शिक्षण संस्थायें स्थापित किए जिसमें श्रीकृष्ण इन्टररालेज का समावेश है। यह बरहज में स्थित बड़ा विद्यालय है। उस जमाने में विद्यार्थी गाँव से बाजार में स्थित विद्यालयों में पढ़ने आते थे। उनको रहने के लिए स्थान मिलना मुश्किल तथा आर्थिक रूपसे बड़ा काम था इस समस्या को ध्यान में रखते हुए राघव दास जी ने विद्यालय के पश्चिम तरफ छात्रावास की व्यवस्था कराया था जो आज भी सही स्थिति में है।

अपने जीवन काल में समाज के सर्वांगीण विकास का विचार करते हुए अनेकों सामाजिक संस्थाए स्थापित किये। बरहज बाजार के अलावा देवरिया, कुशीनगर जैसे कस्बो में अनेक शिक्षण संस्थाए खोले जो आज भी समाज में शिक्षा की लौ जला रहे हैं। बरहज में ही उन्होंने कुष्ठ आश्रम की स्थापना किया। उच्च शिक्षा के लिए डिग्री कॉलेज की स्थापना बरहज क्षेत्र में उनके नाम पर हुआ है। उन्होंने समाज के सम्पन्न वर्ग से आर्थिक सहायता लेकर सामाजिक कार्य किए। उस समय गाँवों में दूर-दूर प्राइमरी तथा मिडिल स्कूल थे। प्राइमरी शिक्षा के लिए पैदल चलकर कई किलोमीटर जाना पड़ता था।

गोरखपुर शहर में ही बी आर डी चिकित्सालय की स्थापना वर्ष 1969 में हुई। पूर्वांचल क्षेत्र में यह एक मात्र मेडिकल कॉलेज था। गोरखपुर जिला का इतिहास बहुत प्राचीन है। गुरू गोरखनाथ के नाम पर इस जिला का नामकरण हुआ है। नाथ सम्प्रदाय के पहले गुरू माच्छिन्द्रनाथ ने यहाँ नाथ सम्प्रदाय का केन्द्र स्थापित किया था। यह शहर मुख्य रुप से बुद्धिस्ट, हिन्दू, मुस्लिम, जैन और सिक्ख संतो और राजाओं से जुड़ा रहा है।

प्राचीन काल में गोरखपुर कौशल राज का हिस्सा था और बाद में माला राज का हिस्सा था। ईशा से 600 वर्ष पहले गौतम बुद्ध के जीवन काल में 16 महाजन पदों में से दो जनपद यही थे। बौद्ध धर्म के संस्थापक गौतम बुद्ध का जन्म कपिलवस्तु में हुआ था जो कौशल राज्य का भाग था। उनकी मृत्यु कुशीनगर में हुई थी जो माला राज्य का अंश था। भगवान महावीर का जन्म इसी क्षेत्र में हुआ था जो जैन धर्म के 24 वें तीर्थंकर थे। उन्होंने महापरिनिर्वाण पावापुरी में लिया था जो वर्तमान कुशीनगर से 15 कि.मी दूर है। यह स्थान सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य और श्री राहुल सांकृत्याथन की जन्मभूमि है। 16वीं शताब्दी के महान संत कबीर का निर्वाण स्थल मगहर यहाँ से 20 कि.मी दूर है। 18वीं सदी के सुफी संत रोशनअली शाह की दरगाह गोरखपुर स्टेशन् से 2 कि.मी की दूरी पर स्थित है। 1857 की क्रांति का मुख्य केन्द्र भी यह शहर रहा है। 04 फरवरी 1922 को चौरी-चौरा पुलिस स्टेशन् पर क्रान्तिकारियों की कार्यवाही स्वतंत्रता संघर्ष में महत्वपूर्ण घटना है। इसके कारण महात्मा गाँधी ने असहयोग आंदोलन बंद कर दिया था। सन् 1903 में भारतीय रेल के लिए मैकेनिकल वर्कशॉप की स्थापना की गई। सन् 1963 में एअर फोर्स स्टेशन् स्थापित किया गया जो शहर से बाहर कुड़ा घाट नामक पर स्थित है। यहाँ मुख्य रूप से एअर फोर्स के विमान उड़ान भरते है। गोरखपुर पूर्वोत्तर रेलवे का मुख्यालय है। देश में सबसे लम्बा रेलवे प्लेटफार्म का रेकार्ड भी गोरखपुर के नाम हो गया है। इस महा मानव का स्वर्गवास 15 जनवरी 1958 को हुआ था। इसके योगदान को चिरस्थाई बनाने के लिए समाज के प्रबुद्ध लोगों ने अनेकों संस्थाएँ इनके नाम पर स्थापित किया है।

बाबा राघव दास मेडिकल कॉलेज, गोरखपुर

डॉ हरेकृष्ण महताब

सत्यनारायण प्रधान

डॉ. हरेकृष्ण माहताब भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के एक महत्वपूर्ण और सम्मानित नेता थे। स्वतंत्रता पश्चात भी वह महत्वपूर्ण पदों पर रहे। सन् 1947 से पहले उन्होंने स्वतंत्रता आदोंलन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। वह उड़ीसा की अन्तरिम सरकार में वर्ष 1946 से 1950 तक मुख्यमंत्री पद पर रहे। दूसरी बार सन् 1956 से 1961 तक वह फिर उड़ीसा के मुख्यमंत्री बने। उनके कार्यों को देखते हुए लोगों ने उन्हें "उत्कल केशरी" नाम दिया। जीवन पर्यंत इसी नाम से जाने जाते रहे।

हरेकृष्ण माहताब का जन्म 21 नवबर 1899 को उड़ीसा के भद्रक जिला में आगरपाड़ा ग्राम में हुआ था। उनके पिता का नाम श्रीकृष्ण चरण दास और माता का नाम श्रीमती तोहफा देवी था। इनका परिवार अभिजात था। इन्होंने अपनी प्राथमिक शिक्षा गाँव से पूरा करने के उपरांत भद्रक हाईस्कूल से दसवीं की परीक्षा पास किया। इंटरमीडिएट की पढ़ाई के लिए उनका नामांकन रावेनशा विधालय में कराया गया। उस समय गाँधीजी का स्वतंत्रता आंदोलन जोर पकड़ रहा था।

तत्कालीन नेताओं ने योजना बनाई थी कि बिना नौजवानों को साथ लिए स्वतंत्रता की अलख नहीं जगा सकते है। क्योकि सरकारी सेवा में कार्यरत व्यक्ति सरकार के विरुद्ध कोई कार्य नहीं कर सकता है। इससे उनकी रोजी-रोटी छीनने का खतरा है। समाज का प्रबुद्ध वर्ग ही उस समय सरकारी सेवा में गुलाम बनकर ब्रिटिश सत्ता का सेवक बना हुआ था। सिर्फ विद्यालय के छात्रों को देशभक्ति की धारा में लाकर देश सेवा का कार्य आगे बढ़ाया जा सकता था। गाँधीजी के आह्वान पर देश के विधालयों में पढ़ने वाले विधार्थियों ने कालेज, स्कूलों का बहिष्कार कर दिया। सन् 1921 में स्वतंत्रता आंदोलन में हरेकृष्ण माहताब शामिल हुए और इसके परिणाम स्वरूप उनके विरुद्ध देशद्रोह का मुकदमा सन् 1922 में दायर हुआ और उन्हें जेल भेज दिया गया। जेल से छूटकर आने के पश्चात वह बालासोर जिला बोर्ड के अध्यक्ष सन् 1924 से 1928 तक रहे। सन् 1924 में ही उन्हें बिहार और उड़ीसा परिषद का सदस्य चुना गया था। गाँधीजी के नमक सत्याग्रह में शामिल होने के कारण सन् 1930 में उन्हें फिर से जेल की सजा हुई थी।

सन् 1932 में कांग्रेस का अखिल भारतीय अधिवेशन पुरी में आयोजित किया गया था। वहाँ इनका चुनाव कांग्रेस सेवा दल के जनरल आफिसर कमांडिंग के रूप में किया गया। ब्रिटिश सरकार ने कांग्रेस सत्याग्रह आंदोलन को दबाने के लिए कांग्रेस पर प्रतिबंध लगा दिया था। यह संस्था कोई राजनीतिक कार्य नहीं कर सकती है। पुरी अधिवेशन के बाद इनको गिरफ्तार कर लिया गया। सन् 1934 में महात्मा गाँधी के आग्रह पर समाज से छुआछूत मिटाने के लिए कई आंदोलन चल रहे थे। उस समय सामाजिक नियम था कि दलित वर्ग का व्यक्ति किसी मंदिर में भगवान का दर्शन और पूजा पाठ नहीं कर सकता था। गाँधीजी इस प्रथा को जड़ से समाप्त करना चाहते थे क्योकि यह हिन्दू समाज की एक बुराई थी। इसके कारण समाज को कमजोर वंचित वर्ग शोषण का शिकार था। यह समाज के सभी लोगों के सहयोग के बिना समाप्त नहीं हो सकता था। हरे कृष्ण माहताब ने गाँधीजी के आदेशो का पूर्ण रूप से पालन करते हुए अपने पैतृक मंदिर को सभी लोगों के दर्शन तथा पूजा हेतु खोल दिया। बाद में अपने गाँव आगरपाड़ा में गाँधी कर्म मंदिर आरम्भ किया। सन् 1930 से 1931 तक वह उत्कल प्रदेश कांग्रेस कमिटी के अध्यक्ष थे। उनका नामांकन कांग्रेस वर्किंग कमिटी में सुभाष चंद्र बोस द्वारा 1938 में किया गया था। वह सन् 1946 तक इस पद पा रहे। बाद में सन् 1946 से 1950 तक वह पूर्व पद पर नामित हुए थे। सन् 1938 में उनको स्टेट पीपल्स

इंकवायरी कमिटी का अध्यक्ष चुना गया था। अपनी अध्यक्षता में इन्होंने सिफ़ारिश किया था कि शासकों का सनादा निरस्त किया जाय और राजाओं के छोटे-छोटे राज्यों का उडीसा प्रांत में विलय कर दिया जाय। भारत छोड़ो आंदोलन में भाग लेने के कारण सन् 1942 में समकालीन बड़े कांग्रेसी नेताओं जैसे सरदार पटेल, मौलाना आजाद, जवाहर लाल नेहरु डॉ प्रफुल चंद घोष, आचार्य कृपलानी के साथ अहमदनगर किला में बंद थे। इन्हें लगभग 3 वर्ष जेल में बिताने के बाद मई 1945 में आजाद किया गया। सन् 1947 में देश आजाद होने से पहले इनको उड़ीसा का पहला मुख्यमंत्री कांग्रेस पार्टी द्वारा नियुक्त किया गया था । 23 अप्रैल 1946 से 12 मई 1950 तक वह इस पद पर रहे।

सन् 1950 में पहली केन्द्रीय सरकार में इन्हें वाणिज्य और उद्योग मंत्रालय का मंत्री नियुक्त किया गया। वे 1952 तक इस पद पर रहे। सन् 1952 में इनको कांग्रेस संसदीय पार्टी का महासचिव नियुक्त किया गया था। सन् 1955 से 1956 तक वे महाराष्ट्र के राज्यपाल पद पर रहे थे। वर्ष 1956 में इन्होंने राज्यपाल पद से इस्तीफा दे दिया और कांग्रेस पार्टी ने इन्हें फिर से उड़ीसा का मुख्यमंत्री नामित किया। इस पद पर वे सन् 1960 तक रहे। इनका विवाह श्रीमती सुभद्रा देवी के साथ हुआ था। अपने मुख्यमंत्री काल में इन्होंने उड़ीसा के विकास के लिए हर सम्भव कोशिश किया जिसका सबसे बड़ा प्रमाण उनका साहसिक एवं बहादुरी का कार्य था राज्य में स्थित छोटी-

छोटी रियासतों को मिलाकर एक राज्य में समाहित करना। उड़ीसा की राजधानी पहले कटक में थी उसे स्थानांतरित कर भुवनेश्वर में स्थापित किया गया। राज्य की सिंचाई की समस्या को हल करने के लिए बहुउद्देशीय बांध हीराकुंड परियोजना को स्वीकृति देकर निर्माण पूरा कराया। वर्ष 1962 में वह लोकसभा के लिए चुने गए तथा इन्हें इंडियन नेशनल कांग्रेस का उपाध्यक्ष नियुक्त किया गया। सन् 1966 में इन्होंने कांग्रेस से इस्तीफा दे दिया और ओड़ीसा जन कांग्रेस की स्थापना की। वह ओड़ीसा विधान सभा के सदस्य के रूप में वर्ष 1967-1971 तथा 1974 में चुने गये थे। सन 1975 में इन्दिरा गाँधी का विरोध करने के कारण राष्ट्रीय आपातकाल की घोषणा के दौरान जेल जाना पड़ा था। इस घटना के बाद इन्होंने कांग्रेस को अलविदा कह दिया। अपने जीवन काल में इन्होंने राजनितिक क्षेत्र में विभिन्न क्षमताओं के साथ समाज और देश को प्रभावित किया। नेहरु से नजदीकी के कारण सामुदायिक विकास, हिन्दू कोड बिल, भूमि सुधार एवं अन्य प्रशासकीय क्षेत्रों में भारी सुधार किये थे। राजनीति में इनके शिष्य थे - बीजू पटनायक, नीलमती राउतरे, जानकी वल्लभ पटनायक, नंदिनी सत्पथी।

इन्होंने उड़ीसा में प्रजातंत्र प्रचार समिति का गठन किया और सन् 1923 में एक साप्ताहिक पत्रिका प्रजातंत्र बालासोर से प्रकाशित कराया जों बाद में डेली प्रजातंत्र के रूप में प्रकाशित होता रहा। वह स्वयं ''झंकार'' मासिक पत्रिका के मुख्य सम्पादक थे। इन्होंने अंग्रेजी साप्ताहिक ''इस्टर्न टाइम्स'' भी प्रकाशित किया था तथा उसके भी मुख्य सम्पादक थे। गाँव मजलिस नाम से एक पुस्तक का सम्पादन किये थे। इन्होंने 24 पुस्तके अग्रेजी और उड़ीया में लिखी हैं। बच्चो के लिए ''मीना बाजार'' पत्रिका प्रकाशित कराये थे। वाल्मीकि रामायण और भगवदगीता का उड़िया में अनुवाद कराया। जेल में रहते हुए चार उपन्यास, कविता तथा इतिहास का लेखन भी किया था। उत्कल विश्वविद्यालय, उड़ीसा उच्च न्यायालय तथा राऊरकेला स्टील प्लांट की स्थापना में इनका योगदान है। इनका सबसे महत्वपूर्ण कार्य उड़ीसा का इतिहास है। वर्ष 1983 में इन्हें साहित्य अकादमी पुरस्कार प्रदान किया गया था।

पुरस्कार एवं सम्मान

डाक्टर हरेकृष्ण माहताब बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। अपने जीवन काल में उन्होंने अनेकों सामाजिक कार्य किए हैं। वह उड़ीसा साहित्य अकादमी और संगीत नाटक अकादमी के दो बार अध्यक्ष थे। आंध्र प्रदेश विश्वविद्यालय ने उन्हें मानद डाक्ट्रेट की उपाधि प्रदान किया था। सागर विश्वविद्यालय ने ''डॉक्टेरेट ऑफ लॉ द मानद'' उपाधि प्रदान कर सम्मानित किया था। भारत सरकार ने इनके नाम पर एक डाक टिकट जारी किया था। इनके सहयोग से उत्कल विश्वविद्यालय में पुस्तकालय की स्थापना हुई थी।

सरदार बुद्धसिंह

पी. के. सिंह

जम्मू-कश्मीर में स्वतंत्रता आंदोलन के संस्थापक महात्मा सरदार बुद्धसिंह का वर्णन जम्मू-कश्मीर राज्य के राजनीतिक आंदोलन के जनक रूप में किया जाता है। उन्होंने उस समय की प्रचलित शासन् प्रणाली के विरुद्ध विद्रोह एवं असंतोष की आवाज बुलंद की थी जब इसके पहले कोई अन्य संगठित राजनीतिक आंदोलन आरंभ नहीं हुआ था।

सन् 1915 के आसपास जब महात्मा गाँधी ने खादी वस्त्र पहने के लिए जनता से आह्वान किया था उस समय पूरे जम्मू एवं कश्मीर राज्य में पहले एकमात्र बुद्धसिंह थे जिन्होंने इसका पालन किया था। तब से उनका जुड़ाव राष्ट्रीय आंदोलन से आरंभ हुआ और तब तक आगे बढ़ता रहा जब तक कि वे जम्मू कश्मीर राज्य के सबसे ऊंचे पद तक नहीं पहुंचे थे। सन् 1942 में वह नेशनल कान्फरेंस पार्टी के अध्यक्ष थे।

बुद्धसिंह का जन्म 16 मई 1884 को मीरपुर जिला, जम्मू में हुआ था, अब वह पाकिस्तान अधिकृत कश्मीर का हिस्सा है। उनके पिता श्री अनंतराम एक वकील थे। इनकी प्रारंभिक शिक्षा मीरपुर और झेलम के सरकारी हाई स्कूल में हुई। 16 वर्ष की आयु में सेटलमेंट कमीशनर के कार्यालय में कैंप क्लर्क के रूप में नौकरी पर नियुक्त हुए। उस कार्यालय के मुखिया टालबोट नामक अंग्रेज़ थे। इनके साधा जीवन से प्रभावित होकर उस अंग्रेज़ अधिकारी ने इनको 28 वर्ष की आयु में तहसीलदार पद पर पदोन्नति दे दिया।

बुद्धसिंह ने सरकारी सेवा में रहते सिक्ख धर्म में शामिल हो गए। वह सिक्ख मत से प्रभावित होकर तथा हिंदुओं द्वारा हरिजनों के साथ अमानवीय व्यवहार करने के प्रतिक्रिया स्वरूप उन्होंने सिक्ख धर्म अपना लिया। अकाली आंदोलन के साथ इन्होंने अपने आपको जोड़ लिया जो उस समय ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध विद्रोह कर रहा था। ये काला पगड़ी पहन कर सिक्ख सभा को संबोधित करते थे।

सरकारी सेवा में रहते हुए बुद्धसिंह ने सार्वजनिक जीवन में प्रवेश किया। पहले तहसीलदार के रूप में और बाद में उपायुक्त के रूप में इन्होंने महाराजा और उनके वरिष्ठ अधिकारियों के सामने ठोस प्रदर्शन किया कि राज्य में भ्रष्टाचार, गरीबी और अन्याय जारी है। वह पहले व्यक्ति थे जिन्होंने महाराज से मांग किया कि जनता को बुनियादी राजनीतिक और सामाजिक अधिकार दिया जाए।

जम्मू से श्रीनगर जाते समय रास्ते में उन्होंने देखा कि कुछ लोग बिना मजदूरी के कार्य कर रहे हैं और कुछ लोग भीख मांग रहे है। श्रमिकों कि दुर्दशा से प्रभावित होकर बुद्धसिंह ने सन् 1922 में हजूरीबाग और श्रीनगर में दो जनसभाओं को संबोधित किया। उत्पीड़ित, निसहाय और अशिक्षित कश्मीरियों की शिकायतों के कारण राज्य के सरकारी और गैर सरकारी क्षेत्रों में भूकंप आ गया। बुद्धसिंह निष्ठावान और विद्रोही स्वभाव के अधिकारी थे जबकि उस समय निरंकुश शासन् के अंतर्गत राजधर्म का विरोध सुनना स्वीकार नहीं था। अनेकों उदाहरण हैं जब बुद्धसिंह ने प्रचलित प्रथाओं का विरोध किया जिसका पालन अधिकारियों के अलावा आमजनता भी करती थी। एक बार वह किश्तवार में तैनात थे। उनको आदेश दिया गया कि वैवाहिक रास्ता की मरम्मत बेगरों से कराया जाय क्योंकि महाराजा हरि सिंह उस क्षेत्र का दौरा करने वाले थे। बुद्धसिंह ने रास्ते कि मरम्मत के लिए धन प्राप्त करने हेतु पत्र भेजा। उन्हें अपने वरिष्ठ अधिकारियों के नाराजगी का सामना करना पड़ा क्योंकि उन्हें ऐसे अप्रत्याशित मांग की उम्मीद नहीं थी। लेकिन उनको मजबूर होकर रास्ते की समय से मरम्मत कराने के लिए रुपया भेजने की व्यवस्था करनी पड़ी। एक बार महाराजा हरिसिंह ने कुछ घोड़े देखने की इच्छा जाहिर किया जिससे कि चुनकर खरीदा जा सके। इसके लिए बुद्धसिंह ने उन लोगों के लिए तीन दिन की मजदूरी मांगा जो महाराज को घोड़े दिखाने के लिए लाने वाले थे। बुद्धसिंह ने समाज में जम्मू रियासत की सेवा में रहते हुए अपने लिए विशेष स्थान बनाया जबकि इसके पहले किसी ने सार्वजनिक जीवन में नहीं किया था।

देश के सिक्ख समुदाय के लोगों ने उनको पंच प्यारा के रूप में चुनाव कर सम्मानित किया। इसमें पाँच सदस्यों का चुनाव होता है। पंच प्यारों के करकमलों से पंजा साहिब में नवीनीकृत मंदिर का शिलान्यास किया गया।

जम्मू के डोगरा राजपूत समुदाय ने इन्हें तीन बार डोगरा सभा का अध्यक्ष चुना जिसकी शुरुआत सन् 1930 से हुई थी। यह राज्य का प्रमुख और पहला गैर सामुदायिक संगठन था।

अंत में कश्मीर की जनता ने उन्हें अपनी प्रमुख राजनीतिक पार्टी, नेशनल कांफरेंस का अध्यक्ष चुनकर अनमोल सम्मान पहली बार सन् 1942 में और दूसरी बार सन् 1944 में प्रदान किया गया। इसके अलावा इस पद पर केवल शेख मोहम्मद अब्दुल्ला का चुनाव सन् 1953 से पहले किया गया था।

जब बुद्धसिंह डोंगरा सभा के अध्यक्ष थे, जम्मू-कश्मीर के महाराज हरिसिंह ने कांग्रेस समर्थक होने के कारण इस सभा पर प्रतिबंध लगा दिया। बुद्धसिंह ने सन् 1934 में किसान पार्टी का गठन किया। इसी वर्ष वह पहली बार विधान सभा के लिए मीरपुर के पुंच विधान सभा चुनाव क्षेत्र से चुने गए थे।

बाद में, प्रगतिशील हिन्दुओं की बड़ी संख्या के साथ इन्होंने शेख मोहम्मद अब्दुल्ला को राजी किया कि सभी समुदायों को मिलकर एक राजनीतिक पार्टी का गठन करना चाहिए।

उनका महान योगदान मुस्लिम कांफरेंस पार्टी का रूपान्तरण कर नेशनल कांफरेंस के रूप में सन् 1938 में करना था। वह सन् 1964 तक इस पार्टी के मुख्य नेता रहे और इसके बाद राजनीति से सन्यास ले लिया। बुद्धसिंह को विविध शर्तों पर तीन बार जेल हुई थी। मई 1946 कश्मीर छोड़ो आंदोलन में भाग लेने के कारण अंतिम बार जेल हुई थी। यद्यपि उनके पहले के बयान ज्ञापन और पार्टी के अध्यक्षी भाषण अतिवादी थे। सन् 1946 में उनके खिलाफ देशद्रोह का मुकदमा उनके विरुद्ध सुधारों के माध्यम से शासन् व्यवस्था से छेड़छाड़ करने के मामले में चलाया गया। स्वतंत्रता और क्रांति उनके नए लक्ष्य थे। स्वतंत्रता के पश्चात जम्मू-कश्मीर में निर्वाचित पहली सरकार शेख मोहम्मद अब्दुल्ला के नेतृत्व में बनी जिसके मंत्रीमण्डल में बुद्धसिंह शामिल हुए। दो वर्ष के भीतर ही उनका मंत्रालय तीन बार बदला गया जिसमें राहत और पुनर्वास से स्वास्थ्य मंत्रालय और स्वास्थ्य मंत्रालय से सूचना और प्रसारण मंत्रालय था। अंत में खिन्न होकर उन्होंने 14 अक्टूबर 1950 को मंत्रीमण्डल से इस्तीफा दे दिया। यह स्पष्ट हो गया कि वह सत्ता की राजनीति में अयोग्य हैं। उन्होंने महसूस किया कि राजनीति में वह स्वयं को समायोजित नहीं कर पा रहे हैं। वह जम्मू नेशनल कांफरेंस के प्रांतीय इकाई के पहले अध्यक्ष चुने गए थे। उन्होंने अपने जीवन चरित की पुस्तक (प्रेम खिलाड़ी पृष्ठ संख्या 203) में लिखा है कि जब शेख मोहम्मद अब्दुल्ला ने इनके ऊपर क्षेत्रीय पक्षपात का आरोप लगाया। इससे वह बहुत आहत हुए। सिद्धांतवादी रूप में उनका झुकाव कमीयुनिस्ट की ओर हो गया। सन् 1954 में कम्युनिस्ट भूत नामक शीर्षक पाफ्लेट में उन्होंने कारण बताया कि लोग क्यों कम्युनिजम की तरफ आकर्षित हुए। उन्होंने कहा था - "जिस गति से सुधार पेश किए जा रहे हैं इससे गरीब जनता संतुष्ट नहीं है जनता तत्काल क्रांति चाहती है।" उनके कम्युनिस्ट सहयोगियों ने सन् 1958 में नेशनल कोंफरेस पार्टी छोड़ दिया और डेमोक्रेटिक नेशनल कांफरेंस का गठन किया जिसका बाद में नाम कमुनिस्ट पार्टी ऑफ इंडिया(एमएल) हो गया। इस प्रकार वह अंत में कमुनिस्ट आंदोलन से भी अलग हो गए।

महाराजा हरिसिंह

बुद्धसिंह को "अपने जीवन के सबसे बड़े आघात" से गुजरना पड़ा जब अगस्त 1953 में शेख मोहम्मद अब्दुल्ला जो उन्हें (बुद्धसिंह) अपना आध्यात्मिक गुरु मानते थे उन्हें "पथभ्रष्ट" कहा और उनके पिछले सभी करार, वचनबद्धता, शपथ, उक्ति, भाषण और घोषणाओं का अपमान किया। (हिंदुस्तान स्टैंडर्ड सितंबर 10,1953)।

राज्य सभा का सदस्य होने के कारण, उन्होंने शेख मोहम्मद अब्दुल्ला के विरुद्ध कार्रवाई का प्रतिवाद किया जिसमें उनकी बर्खास्तगी और कैद शामिल थी।

जब बुद्धसिंह नई दिल्ली से 1964 में अपनी दूसरी पारी पूर्ण करके कश्मीर वापस आये वह कश्मीर राजनीति के सबसे अकेले व्यक्ति थे। उन्होंने जम्मू के निकट अपने खानपुर गाँव में लौट आए।

उन्होंने एक सन्यासी के रूप में अपना बाकी जीवन बिताया। उन्होंने अपने आप को सामाजिक और राजनीतिक जीवन से अलग कर लिया। 16 मई 1975 को इनका स्वर्गवास हो गया।।

बुद्धसिंह दृढ़ विश्वासी, उग्र और कुछ कठोर स्वभाव के थे जो कठिनाई को झलने की क्षमता रखते थे। वह अच्छे वक्ता थे। उनके गैर संप्रदायी और सर्वदेशीय दृष्टिकोण ने राज्य में व्याप्त प्रचुर सांस्कृतिक धार्मिक और क्षेत्रीय विभिन्नता को एक करने का कार्य किया था। सही अर्थों में उन्हें महात्मा और त्यागमूर्ति कहा गया है।

स्वामी श्रद्धानन्द

सुधीर देठे

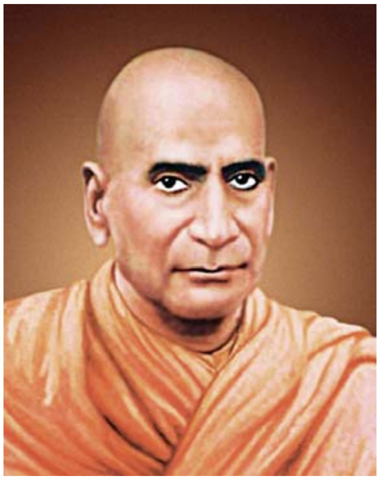

स्वामी श्रद्धानन्द का जन्म 22 फरवरी, 1956 ई. को पंजाब प्रान्त के जालंधर जिले में जलवान नामक ग्राम में हुआ था। उनके पिता का नाम लाला नानकचन्द था। वह ईस्ट इण्डिया कम्पनी द्वारा शासित 'यूनाइटेड प्रोविन्स' (वर्तमान उत्तर प्रदेश) में पुलिस अधिकारी के पद पर नियुक्त थे। श्रद्धानन्द जी के बचपन का नाम बृहस्पति रखा गया था। बाद में वह 'मुंशीराम' नाम से भी पुकारे गए। मुंशीराम नाम सरल होने के कारण अधिक प्रचलित हुआ।

शिक्षा

मुंशीराम जी के पिता का तबादला अलग- अलग स्थानों पर होता रहता था, जिसके कारण मुंशीराम की आरम्भिक शिक्षा अच्छी प्रकार से नहीं हो सकी। लाहौर और जालंधर उनके मुख्य कार्यस्थल रहे। एक बार आर्य समाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द सरस्वती वैदिक धर्म के प्रचार के लिए बरेली पहुंचे। पुलिस अधिकारी नानकचन्द अपने पुत्र मुंशीराम को साथ लेकर स्वामी दयानन्द का प्रवचन सुनने पहुंचे। युवावस्था तक मुंशीराम ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास नहीं करते थे। लेकिन स्वामी दयानन्द जी के तर्कों और आशीर्वाद ने मुंशीराम को दृढ़ ईश्वर-विश्वासी तथा वैदिक धर्म का अनन्य भक्त बना दिया।

व्यवसाय तथा विवाह

अपनी शिक्षा पूर्ण करने के बाद मुंशीराम एक सफल वकील बने। अपनी वकालत से उन्होंने काफ़ी नाम और प्रसिद्धि प्राप्त की। आर्य समाज में वे बहुत ही सक्रिय रहते थे। उनका विवाह शिवा देवी के साथ हुआ था। मुंशीराम का दाम्पत्य जीवन सुखपूर्वक व्यतीत हो रहा था। जब मुंशीराम 35 वर्ष के हुए, तभी पत्नी शिवा देवी स्वर्ग सिधार गई। उस समय उनके दो पुत्र और दो पुत्रियां थी। सन् 1917 में उन्होंने सन्यास धारण कर लिया और 'स्वामी श्रद्धानन्द' के नाम से विख्यात हुए।

समाज-सेवा

सेवा स्वामी श्रद्धानन्द अब दयानन्द सरस्वती के रास्ते पर चल पड़े एवं उनके कामों को पूरा करने का प्रण कर लिया। अपनी जीवन गाथा में उन्होंने लिखा था - "ऋषिवर! कौन कह सकता है कि तुम्हारे उपदेशों से निकली हुई अग्नि ने संसार में प्रचलित कितने पापों को दग्ध कर दिया है। परंतु अपने विषय में मैं कह सकता हूँ कि तुम्हारे सत्संग ने मुझे कैसी गिरी हुई अवस्था से उठाकर सच्चा लाभ करने योग्य बनाया।" स्वामी श्रद्धानन्द अपना आदर्श महर्षि दयानंद को ही मानते थे। महर्षि दयानंद के महाप्रयाण के बाद उन्होंने स्वदेश, स्व-संस्कृति, स्व-समाज, स्व-भाषा, स्व-शिक्षा, नारी कल्याण, दलितोत्थान, स्वदेशी प्रचार, वेदोत्थान, पाखंड खंडन, अंधविश्वास उन्मूलन और धर्मोत्थान के कार्यों को आगे बढ़ाने के कार्य किए।

महत्त्वपूर्ण तथ्य

काशी विश्वनाथ मंदिर के कपाट सिर्फ रीवा की रानी के लिए खोलने और साधारण जनता के लिए बंद किए जाने व एक पादरी के व्यभिचार दृश्य को देखकर मुंशीराम जी का धर्म से विश्वास उठ गया था और वह बुरी संगत में पड़ गए थे। किन्तु स्वामी दयानंद

सरस्वती के साथ बरेली में हुए सत्संग ने उन्हें जीवन का अनमोल आनंद दिया, जिसे उन्होंने सारे संसार को वितरित किया।

मुंशीराम से स्वामी श्रद्धानन्द तक का सफ़र पूरे विश्व के लिए प्रेरणादायी है। स्वामी दयानंद सरस्वती से हुई एक भेंट और पत्नी के पतिव्रत धर्म तथा निश्छल निष्कपट प्रेम व सेवा भाव ने उनके जीवन को त्यागमयीं बना दिया। समाज सुधारक के रुप में उनके जीवन का अवलोकन करने पर ज्ञान होता हैं कि उन्होंने प्रबल विरोध के बावजूद स्त्री शिक्षा के लिए अग्रणी भूमिका निभाई! स्वयं की बेटी अमृत कला को जब उन्होंने 'ईस-ईसा बोल, तेरा क्या लगेगा मोल' गाते सुना तो घर-घर जाकर चंदा इकट्ठा कर 'गुरुकुल कांगडी विश्वविद्यालय' की स्थापना हरिद्वार में कर अपने बेटे हरीश्चंद्र और इंद्र को सबसे पहले भर्ती करवाया। स्वामी जी का विचार था कि जिस समाज और देश में शिक्षक स्वयं चरित्रवान नहीं होते उसकी दशा अच्छी हो ही नहीं सकती। उनका कहना था कि हमारे यहाँ शिक्षक हैं, प्रोफेसर हैं, प्रधानाचार्य हैं, उस्ताद हैं, मौलवी हैं, पर आचार्य नहीं हैं। आचार्य अर्थात् आचारवान व्यक्ति की महती आवश्यकता है। जातीय एकता के लिए उन्होंने सन् 1901 में अपनी पुत्री अमृतकला और पुत्रों का विवाह जाति बंधन तोड़कर डॉ सुखदेव के साथ करवाया। जिसके कारण उनको अपने संबंधियों और मित्रों क विरोध का सामना करना पड़ा।

गुरुकल की स्थापना

वर्ष 1901 में स्वामी श्रद्धानन्द ने अंग्रेजों द्वारा जारी शिक्षा पद्धति के स्थान पर वैदिक धर्म तथा भारतीयता की शिक्षा देने वाले संस्थान "गुरुकुल" की स्थापना की। उनके इस गुरुकुल के लिए 1200 बीघा भूमि चौधरी अमनसिंह ने दान में दी थी। हरिद्वार के कांगड़ी गांव में गुरुकुल विद्यालय खोला गया। इस समय यह मानद विश्वविद्यालय है,

जिसका नाम गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय है। राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी उन दिनों अफ्रीका में संघर्षरत थे। स्वामी श्रद्धानन्द जी ने गुरुकुल के छात्रों से 1500 रुपए एकत्रित कर गाँधीजी के पास भेजा था। गाँधीजी जब अफ्रीका से भारत लौटे तो वह गुरुकुल पहुंचे तथा महात्मा श्रद्धानन्द तथा राष्ट्रभक्त छात्रों के समक्ष नतमस्तक हो उठे। गाँधीजी ने श्रद्धानन्द को महात्मा श्रद्धानन्द कहकर पुकारा।

स्वाधीनता आंदोलन में योगदान

स्वामी श्रद्धानन्द ने दलितों की भलाई के कार्य को निडर होकर आगे बढ़ाया। साथ ही कांग्रेस के स्वाधीनता आंदोलन का बढ़-चढ़कर नेतृत्व भी किया। कांग्रेस में उन्होंने 1919 से लेकर 1922 तक सक्रिय रुप से महत्त्वपूर्ण भागीदारी की। 1922 में अंग्रेज सरकार ने उन्हें गिरफ्तार किया, लेकिन उनकी गिरफ्तारी कांग्रेस के नेता होने की वजह से नहीं हुई थी, बल्कि वे सिक्खों के धार्मिक अधिकारों की रक्षा के लिए सत्याग्रह करते हुऐ बंदी बनाये गये थे। स्वामी श्रद्धानन्द कांग्रेस से अलग होने के बाद भी स्वतंत्रता के लिए कार्य लगातार करते रहे। हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए स्वामी जी ने जितने कार्य किए, उस वक्त शायद ही किसी ने अपनी जान जोखिम में डालकर किए हों। वह ऐसे महान युगचेता महापुरुष थे जिन्होंने समाज के हर वर्ग में जनचेतना जगाने का कार्य किया।

हत्या

देश की अनेक समस्याओं तथा हिन्दुओं के उद्धार हेतु उन्होंने एक पुस्तक लिखी थी ''हिन्दू सलिडेरीटी- सेवियर आफ डाईगरेस" अर्थात ''हिन्दू संगठन मरणोन्मुख जातिका रक्षक"। इसमें राजनीतिज्ञों के बारे में उनका विचार था कि भारत को नेताओं की अपेक्षा सेवकों की आवश्यकता है।

आर्य समाज से समाज के हर वर्ग के लोग प्रभावित थे। करांची की एक मुस्लिम महिला अपने दो बच्चों के साथ दिल्ली आकर स्वामी श्रद्धानन्द से मिली और आग्रह किया कि मुझे आर्य समाज में शामिल कर लिया जाए। गहन विचार के बाद तीनों को आर्य समाज में शामिल किया गया। उनको नया नाम शांतिदेवी दिया गया और उनके रहने तथा भोजन की व्यवस्था कर दिया। कुछ दिनों के बाद महिला का पति दिल्ली आकर, पत्नी को वापस चलने तथा धर्म परिवर्तन का सुझाव दिया। महिला ने जाने से इन्कार कर दिया। दिल्ली में यह एक धार्मिक विवाद का मुद्दा हो गया। इससे प्रभावित हो कर अब्दुल रशीद नामक व्यक्ति स्वामीजी से मिलने गया और धोखे से गोली मार दिया जिसके कारण 23 दिसंबर 1926 को उनका देहान्त हो गया।

सुरेंद्र मोहन घोष

राजीव झा

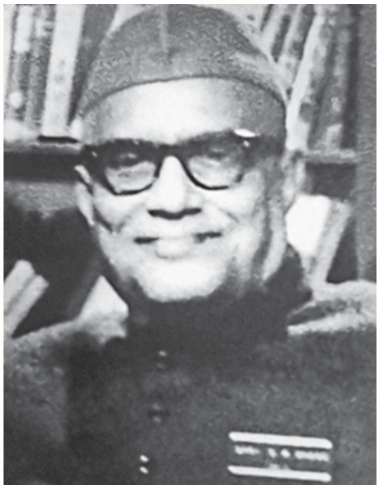

सुरेंद्र मोहन उन सहस्त्रों क्रांतिकारियों में से एक हैं, जिन्होंने स्वतंत्रता संघर्ष में पूर्ण योगदान दिया था। राजनीतिक स्वतंत्रता की प्राप्ति हेतु वह हिंसा व शक्ति को आवश्यक मानते थे। संपूर्ण भारतवर्ष के जनमानस को ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध उद्वेलित करना एवं क्रांति की अग्नि को धधकाना ही उनके जीवन का लक्ष्य था।

सुरेंद्र मोहन का जन्म मैमनसिंह जिला (जो अब बांग्लादेश में है) के एक मध्यमवर्गीय परिवार में 22 अप्रैल, 1893 को हुआ था। उनकी माता श्री कामिनी मोहन घोष जिला न्यायालय के प्रमुख वकील श्री चंद्रनाथ मुंशी की पुत्री थीं। तीन वर्ष की आयु में ही माता की छत्रछाया सिर से उठ गया। सुरेंद्र मोहन को बाल्यकाल से ही परमात्मा में अडिग आस्था थी। जब वे बड़े हुए तो उन्होंने अपने परिवार के वरिष्ठ सदस्यों से भारत की प्राचीन एवं गौरवपूर्ण सभ्यता के संबंध में ज्ञान प्राप्त करना आरंभ कर दिया। रामायण और महाभारत की कथाओं ने उनके मन में ऐसी प्रेरणा उत्पन्न कर दी कि वे भारत के स्वर्णिम अतीत के बारे में ज्ञान प्राप्त करने के लिए अधिक उत्सुक हो गए। धीरे-धीरे उन्होंने यह भी जाना कि अंग्रेजों ने किस कूटनीति से इस देश में अपने पैर पसारे और हमारी मातृभूमि को परतंत्रता की बेड़ियों में बाँध दिया। इस तरह ब्रिटिश राज्य-सत्ता की दासता से भारतभूमि को मुक्ति दिलाने की प्रबल भावना उनके हृदय में जागृत हुई।

उन दिनों बंगाल में उग्र राष्ट्रवाद फैला हुआ था। बंकिमचंद्र के "आनंद मठ" एवं "वंदे मातरम्" गीत, स्वामी विवेकानंद के राजनीतिक तथा दार्शनिक भाषण तथा श्री अरविंद के क्रांतिकारी लेख सभी नवयुवकों के हृदय को उद्वेलित कर रहे थे। सभी ब्रिटिश राज्यसत्ता के विरुद्ध संघर्ष करने के लिए तैयार हो रहे थे। ऐसे समय में बंगाल में एक नया मोड़ आया। लार्ड कर्जन ने बंग-भंग योजना बनाई इससे सारे प्रांत में भूकंप आ गया। ऐसे समय में बंगाल की युवा पीढ़ी विदेशी दासता की बेड़ियों को तोड़ने के लिए एकदम तैयार हो गई। पूरे देश में उग्र राष्ट्रवाद की प्रचंड लहर उभरी। सुरेंद्र मोहन बंग-बंग विरोधी आंदोलन में सक्रिय हो गए। वे सभाओं और प्रदर्शनों में भाग लेने लगे। कुछ दिनों बाद उन्होंने "सुहृद समिति" और "साधना समाज" की सदस्यता ग्रहण कर ली। इन्हीं दिनों उन्होंने कई महानतम नेताओं के भी भाषण सुने। श्री विपिनचंद्र पाल के भाषणों का इनके मन पर गहरा प्रभाव पड़ा। श्री अरविंद के सम्पर्क में आए और उनसे अधिक ज्ञान-प्राप्ति की भावना आपके मन में बलवती हो उठी। वे उस समय के प्रमुख क्रांतिकारी नेता श्री हेमेंद्र किशोर के संपर्क में आ गए। क्रांतिकारी गतिविधियों का मुख्यालय मैमनसिंह नगर में स्थित श्री हेमेंद्र किशोर का मकान था।

राजनीति में अत्याधिक लिप्त रहते हुए भी उन्होंने अच्छे अंकों से मैट्रिक की परीक्षा पास की। आगे वे मैमनसिंह स्थित आनंद मोहन कॉलेज में नामांकन कराया। कॉलेज में सरस्वती पूजा के अवसर पर छात्रों द्वारा अभिनीत "जूलियस सीज़र" नामक अंग्रेजी नाटक में ब्रुटस की भूमिका इस प्रकार निभाई कि कॉलेज के एक प्राध्यापक ग्रीन रूम में दौड़ते हुए आए और चीखने लगे - "ब्रुटस कहाँ है" और उन्होंने सुरेंद्र मोहन को गले से लगा लिया।

1911 ई. में सुरेंद्र मोहन अचानक ही बंदी बना लिए गए। उनके घर की तलाशी ली गई तो उनके पास से एक रिवॉल्वर बरामद हुआ। पुलिस ने उनके साथ बहुत निर्ममता का बर्ताव किया, किंतु उनसे कोई भी जानकारी प्राप्त करने में सफल नहीं हो सके। उन

पर अभियोग चलाया गया तथा उन्हें एक वर्ष की कैद की सजा सुना दी गई। 1912 ई. में वे कारावास से मुक्त हो गए। उन्हें एकदम कलकत्ता भेज दिया गया ताकि वे वहाँ का कार्यभार सँभाल सकें। परंतु अलीपुर बमकांड के कारण स्थिति अस्त-व्यस्त हो गई। मुख्य समस्या यह थी कि सभी क्रांतिकारी बिखर गए थे। श्री सुरेंद्र मोहन ने कठिन परिश्रम से सबको इकट्ठा किया। धन और हथियारों का संग्रह किया। धन के लिए इस दल को कई कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। धन की कमी को पूरा करने के लिए कई बार इन्हें डकैतियों का सहारा लेना पड़ा।

सुरेंद्र मोहन बड़ी निष्ठा से कार्य कर रहे थे, परंतु शीघ्र ही उन्हें यह अनुभूति हुई कि इस ढंग से भारत में ब्रिटिश शासन् को उखाड़ना मुश्किल है। उन्होंने अपनी कार्यविधि का निर्धारण किया और उस प्रोग्राम को लेकर वे हेमेंद्र किशोर के पास गए कि उन्हें ये गुप्त गतिविधियाँ पसंद नहीं हैं। वे गाँव-गाँव में घूमकर लोगों को यह समझाना चाहते हैं कि परतंत्रता की बेड़ियों से कैसे हम मुक्त हो सकते हैं। हेमेंद्र किशोर उनके बदलते हुए विचारों को सुनकर स्तंभित हो गए। उन्होंने तर्क द्वारा सुरेंद्र मोहन को समझाना चाहा, परंतु सुरेंद्र मोहन टस से मस नहीं हुए। उन्होंने उनकी योजना को पढ़ा, परंतु कोई उत्तर नहीं दिया।

सुरेंद्र मोहन अपने गाँव वापस आ गए। उस समय उनके नाना की मृत्यु हो गई थी इसलिए उन्हें प्रचुर धनराशि मिली। यदि वे चाहते तो भोग-विलास का जीवन व्यतीत कर सकते थे, परंतु उस स्वतंत्रता के दीवाने को सांसारिक जीवनयापन पसंद नहीं था। उन्होंने ग्राम-ग्राम में पदयात्रा आरंभ कर दी। वे गाँव में जाकर लोगों को राजनीतिक दासता और जमीनदारी व अंग्रेजी राज्यसत्ता के जुल्मों से अवगत कराते थे तथा उनमें देशभक्ति की भावना को जागृत कराते थे। उन्होंने रात्रि-पाठशालाएँ खोल दीं जिनमें लोगों को इतिहास, भूगोल व धर्म की शिक्षा दी जाती थी। इससे लोगों का ज्ञान बढ़ा और हिन्दू-मुस्लिम एकता में सहायता मिली।

हेमेंद्र किशोर एक वर्ष तक सुरेंद्र मोहन की गतिविधियों को देखते रहे बाद में उन्होंने नरेश चौधरी नामक क्रांतिकारी को उनकी गतिविधियाँ देखने के लिए भेजा। वे सुरेंद्र मोहन के घर ठहरे। उन्होंने रात्रि में सुरेंद्र मोहन के घर पर होने वाले भजन-कीर्तन में भी हिस्सा लिया। उस समय उनकी लगभग 500 व्यक्तियों से भेंट हुई। नरेश चौधरी को यह स्वीकार करना पड़ा कि क्रांतिकारी गतिविधियों के साथ जनसंपर्क अधिक आवश्यक है। हेमेंद्र किशोर पर भी उस बात का प्रभाव पड़ा और उन्होंने पूरे जिले के लिए यही कार्यक्रम स्वीकार कर लिया। सुरेंद्र मोहन द्वारा आरंभ की गई इन्हीं गतिविधियों का परिणाम था कि वे 1920 ई. में जब काँग्रेस में सम्मिलित हुए तो उन्हें 50 लाख से भी अधिक जनसंख्या वाले मैमनसिंह जिले का काँग्रेस की पताका के नीचे लाने में कोई कठिनाई नहीं हुई, जबकि वहाँ 75 प्रतिशत मुसलमान थे। मुस्लिम जनसंख्या के इतने अधिक होते हुए भी यहाँ मुस्लिम लीग का कोई कार्यालय नहीं था। सुरेंद्रनाथ यहाँ के सर्वमान्य नेता थे।

लार्ड रीडिंग ने प्रिंस ऑफ वेल्स के कलकत्ता आगमन पर उनका बहिष्कार न किए जाने की स्थिति में काँग्रेस को कुछ सुविधाएँ देने का प्रस्ताव किया था किन्तु वायसराय के इस अनुरोध को नेताओं ने ठुकरा दिया और कलकत्ता में प्रिंस ऑफ वेल्स के आगमन पर बहिष्कार किया गया। सारे देश में आंदोलन फैल गया था। परंतु इसी समय 12 फरवरी, 1922 को गोरखपुर जिला के चौरा चौरी थाना पर शांतिपूर्ण सत्याग्रहियों पर पुलिस ने गोली चलाई। इससे क्रुद्ध होकर लोगों ने 22 पुलिस वालों को जीवित जला दिया।

कर सकें। इसलिए वह मैमनसिंह वापस चले गए। उन्होंने वहाँ देखा कि कांग्रेस का संगठन बिल्कुल अस्त-व्यस्त है तथा कोष की कमी है। पर्याप्त विरोध के होते हुए भी उन्होंने कोष इकट्ठा किया और काँग्रेस का पुनर्गठन किया।

कलकत्ता लौटने पर सुरेंद्र मोहन ने सभी स्थानों का दौरा करने का कार्यक्रम बनाया, परंतु उन्हें अगले दिन ही सबेरे बंदी बना लिया गया और प्रेसीडेंसी जेल में नजरबंद कर दिया गया। वहाँ से आपका स्थानांतर भूटान सीमा पर स्थित बक्सर-नजरबंदी शिविर में कर दिया गया। कुछ समय वहाँ रहने के बाद उन्हें त्रिचिरापल्ली जेल भेज दिया गया। उसी जेल में लाहौर षड्यंत्र कांड के दो बंदी बटुकेश्वरदत्त एवं कुंदनलाल भी थे। यद्यपि उन दोनों को पृथक-पृथक रखा गया था फिर भी सुरेंद्र मोहन ने उनसे मिलने का अवसर निकाल लिया। सुभाष बाबू जबलपूर जेल में थे और उन्हें वहाँ से नैनी जेल भेज दिया गया था। सुरेंद्र मोहन ने अपने संपर्क-सुत्रों के द्वारा सुभाष बाबू को यह संदेश भिजवाया कि वे बिगड़ते हुए स्वास्थ्य को आधार बनाकर विदेश- यात्रा का प्रोग्राम बनाएँ। सुभाष बाबू ने जब धन की कठिनाई बताई तो सुरेंद्र मोहन ने उसके समाधान का भी आश्वासन् दिया। स्वास्थ्य के आधार पर सुभाष बाबू का केस तैयार किया गया और उन्हें बाहर जाने का विकल्प दे दिया गया। सुभाष बाबू ने इस निर्णय को स्वीकार कर लिया।

ज्योंही मद्रास षड्यंत्र कांड आरंभ हुआ सुरेंद्र मोहन को राजमुन्द्री जेल में भेज दिया गया, किन्तु यहाँ भी सुरेंद्र मोहन ने जेल के बाहर की गतिविधियों से संपर्क बनाए रखा। सुरेंद्र मोहन को राजमुन्द्री से दमोह जिले में स्थानांतरित कर दिया गया। इसी बीच 1935 ई. के अधिनियम के अंतर्गत प्रांतीय स्वायत्तता की घोषणा हो गई। काँग्रेस चुनाव में जीत गई और कई प्रांतों में उसने सत्ता ग्रहण कर ली।

हरीपुरा काँग्रेस अधिवेशन के बाद सुरेंद्र मोहन को कारावास से रिहा कर दिया गया। बाहर आकर उन्होंने देखा कि बंगाल की राजनीति में बहुत परिवर्तन आ गया है इसलिए उन्होंने बंगाल के मुस्लिम नेताओं से वार्ता करने का निश्चिय किया। उन्होंने मुस्लिम नेताओं के समक्ष काँग्रेस के साथ संयुक्त मंत्रिमंडल के गठन का प्रस्ताव रखा। अंत में मुस्लिम नेता संयुक्त मंत्रिमंडल बनाने पर सहमत हो गए। सुभाष बाबू और गाँधीजी ने भी इसमें अपनी सहमति प्रकट की। इस तरह सुरेंद्र मोहन का परिश्रम सफल हुआ।

गाँधीजी ने आंदोलन को स्थगित करने की घोषणा कर दी। देशबंधु चिंतरंजनदास उस समय जेल में थे। वे इस निर्णय से क्षुब्ध हो उठे। उन्होंने सुरेंद्र मोहन को जेल में भेंट करने के लिए बुलाया और कहा कि वे काँग्रेस महासमिति की दिल्ली में होने वाली बैठक में इस निर्णय का विरोध करें।

सुरेंद्र मोहन के हृदय में श्री चिंतरंजन के प्रति गहन आस्था और श्रद्धा थी, किन्तु वे बहुत सिद्धांतवादी व्यक्ति थे। नागपुर में असहयोग प्रस्ताव के पारित होने के तुरंत बाद ही देशबंधु जब मैमनसिंह गए तो सुरेंद्र मोहन जी ने उनके स्वागत का रेलवे स्टेशन् पर ही भव्य आयोजन किया था। दूसरी बार वे महात्मा गाँधी के आव्हान पर वकालत छोड़कर आए तो उन्होंने मैमनसिंह में तिलक स्वराज्य कोष के लिए धन इकट्ठा करना चाहा, परंतु उन्हें सफलता नहीं मिली। जब देशबंधु निराश हो गए तो सुरेंद्र मोहन ने एक ही दिन में बीस हजार रुपया इकट्ठा कर लिया। आंदोलन चल ही रहा था अँग्रेजों ने एक अध्यादेश जारी कर दिया और सुरेंद्र मोहन को बंदी बना लिया गया। उन्हें पहले अलीपुर के केंद्रीय कारागार में और उसके बाद मिदनापुर जेल में रखा गया। लगभग दो माह बाद उन्हें श्री सुभाषचंद्र एवं सत्येन मित्र सहित मांडले जेल भेज दिया गया। इसी कारागार में महात्मा गाँधी को भी रखा गया था। परंतु जल्दी ही सुरेंद्र मोहन को कलकत्ता जेल में भेज दिया गया जहाँ तीन-चार माह रहने के बाद 1928 ई. में उन्हें रिहा कर दिया गया।

जेल से रिहा होने के बाद जब सुरेंद्र मोहन सुभाषचंद्र से मिले तो उन्होंने उन्हें कलकत्ता में ही छः माह तक रहने का आग्रह किया। परंतु सुरेंद्र मोहन ने कहा कि वह एक माह के लिए अपने जिले मैमनसिंह जाना चाहते हैं। जिससे कि वे अपने जिले को संगठित

भारत से अदृश्य होने के बाद सुभाषचंद्र बोस जर्मनी चले गए थे; वहाँ से वे 12 जून, 1943 को जापान पहुँचे। आजाद हिंद फौज अस्त-व्यस्त हो गई थी। उन्होंने उसका कार्यभार सँभाला। बंगाल में भी आजाद हिंद फौज की सहायतार्थ सुरेंद्र मोहन के नेतृत्व में एक समिति का गठन किया गया। बंगाल असेम्बली के निर्वाचन होने के बाद सुरेंद्र मोहन ने बंगाल में संयुक्त मंत्रिमंडल के गठन हेतु मुस्लिम नेताओं से वार्ता चलाई, किन्तु मुस्लिम लीग ने अकेले ही मंत्रिमंडल का गठन किया। उन्हीं दिनों जिन्ना ने घोषणा की कि हम भारत का विभाजन कराएँगे या विनाश करेंगे। मुस्लिम लीग ने 16 अगस्त को सीधी कार्यवाही दिवस मनाने की घोषणा की। 15 अगस्त को सुरेंद्र मोहन ने सभा की और बंगाल सरकार की कड़ी आलोचना किया कि वह सांप्रदायिक उपद्रवों को बढ़ावा दे रही है।

16 अगस्त को मुस्लिम लीग की सभा समाप्त होने के बाद उपद्रव फैल गया। सुरेंद्र मोहन ने अपनी जान को खतरें में डालकर उपद्रवग्रस्त इलाकों का दौरा किया, परंतु उसका असर नहीं हुआ। सुरेंद्र मोहन ने समझ लिया कि अब अहिंसा सही औषधि नहीं है। उन्होंने वीर युवकों का एक दल तैयार किया, उन्हें हथियार दिए और उन्होंने कार्यवाही आरंभ कर दी। कलकत्ता में भी विपुल नरसंहार हुआ। सुरेंद्र मोहन ने स्थित का अध्ययन किया और दिल्ली आकर महात्मा गाँधी से मिले और उन्हें स्थिति से अवगत कराया।

16 फरवरी, 1946 को ब्रिटिश प्रधानमंत्री क्लीमेंट एटली द्वारा की गई घोषणा के अनुसार सत्ता-परिवर्तन के लिए एक मिशन् भारत भेजा गया, परंतु उस मिशन् के प्रस्तावों को काँग्रेस ने ठुकरा दिया। सुरेंद्र मोहन से उनके "जुगांतर पार्टी" के पुराने सहयोगी सुरेश मजूमदार ने अनुरोध किया कि वे शरत् बोस को मंत्रिमंडल में शामिल करने का प्रयास करें। श्री कृपलानी उस समय काँग्रेस अध्यक्ष थे। शरत् बाबू और कृपलानी के विचार मेल नहीं खाते थे। सुरेंद्र मोहन ने दोनों में मैत्रीपूर्ण संबंध स्थापित करवाए। उन्होंने मौलाना आजाद व सरदार पटेल को भी इस बात के लिए मना लिया। वे नेहरू जी के पास भी गए। नेहरू जी के गुस्से में बोलने पर सुरेंद्र मोहन उत्तेजित होकर चल पड़े। परंतु दुबारा नेहरू जी ने उन्हें वापस बुलाकर बातचीत की। कुछ दिनों बाद नेहरू जी नोआखाली गए। वे गाँधीजी को भी अपने साथ ले गए। बैठक बुलाई गई। नेहरू जी ने कार्यसमिति के सभी सदस्यों को यह स्पष्ट किया कि किन परिस्थितियों में वे विभाजन स्वीकार करने पर बाध्य हुए हैं। सरदार पटेल ने भी उनका समर्थन किया। गाँधीजी सांप्रदायिक आधार पर भारत के विभाजन के विरोधी थे। वह अप्रसन्न थे; अंत में विवश होकर उन्होंने स्वीकृति दे दी।

जब काँग्रेस कार्यसमिति ने इस निर्णय की पुष्टि कर दी तो सुरेंद्र मोहन भी महर्षि अरविंद के पास पाँडिचेरी गए और उनको कहा कि इस समय विभाजन ही स्वीकार करना ठीक है। महर्षि अरविंद द्वारा व्यक्त किया गया मत 15 अगस्त को एक सार्वजनिक वक्तव्य में प्रसारित किया गया, उसी दिन भारत की राजनीतिक स्वतंत्रता का जन्म दिवस था।

सुरेंद्र मोहन जैसे व्यक्ति की राजनीतिक व सामाजिक गतिविधियों का सूक्ष्म विश्लेषण करना बहुत कठिन है। यद्यपि वह राजनीति में पूर्णतः डूबे रहे फिर भी वे एक क्षण के लिए भी जीवन के वास्तविक उद्देश्य को नहीं भुला पाए। आध्यात्मिकता में उनकी गहन आस्था रही। महर्षि अरविंद के प्रति वह अत्यधिक आस्थावान रहे। आध्यात्मिक और राजनीति का ऐसा समन्वय बड़ा विरल होता है।

सुरेन्द्र मोहन घोष के कुछ महत्वपूर्ण उद्धरण कविता रूप में इस प्रकार है:

1) *ये शरीर जल जाएगी चीता पर सजकर*
बची रहेगी सिर्फ एक राख।
कल्पना में देखें अपनी चिता को
और कल्पना में देखें अपनी बची हुई राख।
सत्कर्म अगर पूंजी होगी आपके संग
तिलक बन जाएगी आपकी राख।
निर्णय तो आपको स्वयं ही करना है
किस कदर बनना चाहेंगे आप राख।

2) *सत्कर्म करते हुए धन कमाए,*
और करते रहें जन कल्याण।
फिर अंत समय में यमराज नहीं,
लेने आएंगे, आएंगे स्वयं भगवान।

स्वतंत्रता और हिन्दी

जयंतिका मुखर्जी

हिन्दी हमारी राजभाषा है और देश में राजभाषा तथा संपर्क भाषा के रूप में इसका प्रयोग किया जाता है। हिन्दी का विकास और इतिहास विस्तृत और विशाल है। इसकी प्रगति में देश के असंख्य लोगों का चिंतन और मनन शामिल है। हिन्दी आज जन मन गण की भाषा और भारत का गौरव है। किसी भी भाषा का राजभाषा बनने का सपना तो अवश्य ही रहता है लेकिन देश में किसी एक ही भाषा को राजभाषा के सम्मान से सम्मानित किया जाता है। किसी भाषा का राजभाषा बनने का रास्ता सुगम नहीं होता। यह कठिनाई और दुर्लभ परिस्थितियों से होकर गुजरता है। अगर इस विषय में हम हिन्दी की बात करें तो कह सकते हैं कि हिन्दी का भी राजभाषा बनने का पथ सुगम नहीं था।

इसके लिए हिन्दी के इतिहास पर नजर डालते हैं। हिन्दी का विकास संस्कृत से माना जाता है जो पाली, प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं की टेढ़े-मेढ़े रस्तों से गुजरता हुआ ठेठ हिन्दी से आधुनिक हिन्दी (खड़ी बोली) के सफर को पूरा करता है। हिन्दी का विकास चार्ट कुछ इस तरह है-

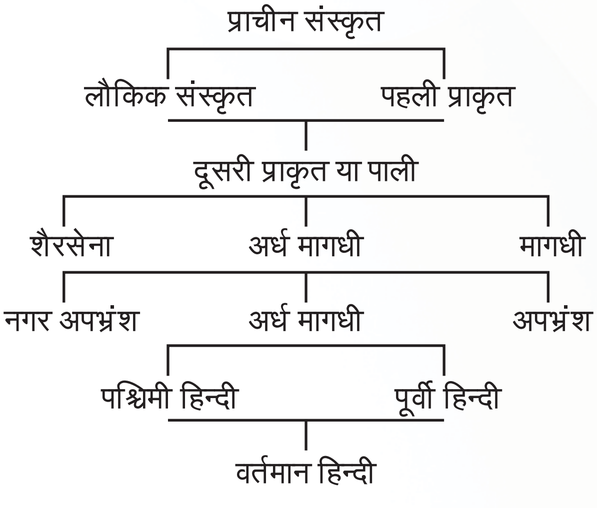

आधुनिक काल में भारतेन्दु हरिश्चंद्र और महावीर प्रसाद द्विवेदी जैसे प्रबल प्रतिभा सम्पन्न व्यक्तियों ने हिन्दी को जो रूप दिया वहीं आज आधुनिक हिन्दी के रूप में उपयोग होती है। भारतेन्दु जी का कहना था कि "कोई भी देशवासी निज भाषा-ज्ञान के बिना आत्महीनता से उबर नहीं सकता, भले ही वह अंग्रेजी पढ़-लिखकर अनेक गुणों में प्रवीण हो जाए।" उनका कहना था कि अपनी भाषा कि उन्नति ही सब उन्नति का मूल है, क्योंकि परदेशी बुद्धि और वस्तुओं के मोह में फँसकर हम सदा के लिए गुलाम ही बने रहेंगे -

"अंग्रेजी पढ़ि के जदपि सब गुन होत प्रवीन।
पै निज भाषा ज्ञान बिन रहत हीन के हीन।।
परदेसी की बुद्धि अरु वस्तुन की कर आस।
परबस ह्वै कब लौ कहौं रहिहौ तुम ह्वै दास।।
निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति का मूल।
बिन निज भाषा ज्ञान के मिटत न हिय को शूल।।"

ज्ञातव्य हो कि निज भाषा से भारतेन्दु जी का आशय हिन्दी से ही था। हिन्दी ने जब अपना कदम विकास की ओर बढ़ाया तो ऐसे ही विद्वजनों ने अपना हाथ फैलाकर हिन्दी को अपना बनाने के लिए यथासंभव प्रयास किया। यह अथक प्रयास तब सफल साबित हुआ जब स्वतंत्र भारत ने हिन्दी को राजभाषा बनाकर इसे उचित स्वीकृति और सम्मान दिया गया।

उल्लेखनीय है कि सन् 1857 का सिपाही विद्रोह जिसे इतिहासकार पहली स्वतंत्रता की लड़ाई भी कहते हैं इसकी असफलता के बाद यह पूर्ण रूप से प्रमाणित हो गया कि एकता को कायम करने के लिए और उसे प्राप्त करने के लिए एक ऐसी सशक्त भाषा की आवश्यकता होगी जो अधिकतर भारतीय द्वारा बोली और समझी जाएगी। डॉ. अम्बा शंकर नागर का इस विषय में विचार है-

"सन् 1857 का आंदोलन दासता के विरुद्ध स्वतंत्रता का पहला आंदोलन था। यह आंदोलन यद्यपि संगठन और एकता के अभाव के कारण असफल रहा, पर इसने भारतवासियों के ह्रदय में स्वतन्त्रता की उत्कट अभिलाषा उत्पन्न कर दीं। आगे चलकर जब भारत के विभिन्न प्रांतों में स्वतंत्रता के लिए संगठित प्रयत्न आरंभ हुआ तो यह स्पष्ट हो गया कि बिना एक सामान्य भाषा के देश में संगठन होना असंभव है।"

जब देश अपनी स्वतंत्रता की बलिबेदी में समर्पित होने के लिए आंदोलित हो रहा था तो कहना न होगा कि हिन्दी ही एक मात्र ऐसा जरिया थी जो देश के लोगों में नवोन्मेष और स्फूर्ति संचार करने में अनेक लेखों, कविताओं, कहानियों द्वारा जनता में जागरूकता लाने में सहभागिता दी है। निराला का गीत "भारती जय विजय करे, कनक शस्य कमल धरे" हो या बालकृष्ण शर्मा "नवीन" का आह्वान गीत "कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ" नवयुवकों को स्वतंत्रता संग्राम में मर मिटने के लिए संदेश है। छायावादी युग में स्वतंत्रता के लिए जिस स्त्रोत से सभी भारतीय को जोड़ा गया वह अभिन्न रूप से हिन्दी ही है। हिन्दी के वाङ्मय को समृद्ध करने में छायावादी युग के पहले ही प्रयास शुरू हो गया था जो हरिश्चन्द्रिका पत्रिका में भारतेन्दु के लेख से यह प्रयास झलकता है। केवल कवियों या लेखकों ने ही नहीं विभिन्न समाचार पत्र और पत्रिकाओं ने भी हिन्दी के माध्यम से सम्पूर्ण देश को एक सूत्र में जोड़ा। देश को जनक्रांति की ओर अभिमुखी होने में हिन्दी का योगदान महत्वपूर्ण रहा है।

देश में जब स्वतंत्रता की लहर सर्वत्र दौड़ रही थी तो स्वतंत्रता संग्रामियों ने भी इसी हिन्दी के द्वारा अपने विचार और ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध अपनी आवाज बुलंद की। चाहे वह महात्मा गाँधी का दांडी यात्रा का भाषण वर्धा में हो या सरदार पटेल का सेवाग्राम में हो। उन सभी ने अपने विचारों का प्रकटीकरण हिन्दी के द्वारा ही देशवासियों तक देना आसान समझा। हिन्दी की अपनी सर्वोत्तम और परिवर्तनीय स्वरूप की पहचान हुई। जॉर्ज ग्रियसन् ने हिन्दी के वृहद कलेवर को समझकर इसका विश्लेषण किया और इसे सर्वोपरि माना। हिन्दी का लचीलापन और अपने में सभी भाषाओं को आत्मसात् करने की क्षमता हिन्दी को 162 भाषाओं में श्रेष्ठता प्रदान करती है। भारत जैसे विशाल देश में बोलियों और भाषाओं की भरमार है। हिन्दी के वाङ्मय में जहां तत्सम, तत्भव शब्दावली है वहीं उर्दू, अंग्रेजी, पुर्तगाली, फ़ारसी आदि शब्दों का भी समावेश अनायास ही हो गया है। जैसे कुछ के उदाहरण निम्न हैं-

फ़ारसी	कमर, खर्च, गुलाब, चश्मा
अरबी	अदालत, तारीख, मुकदमा
तुर्की	तोप, लाश
पुर्तगाली	नीलम, कमरा, चीकू, पेरु
अंग्रेजी	ऑफिस, कॉफी, कप

सन् 1826 में पहला साप्ताहिक पत्र "उदन्त मार्तण्ड" का प्रकाशन् आरंभ हुआ। इस पत्रिका से हिन्दी पत्रिका जगत की शुरुआत मान सकते हैं। बाल गंगाधर तिलक, जिन्होंने ओजस्वी स्वर में "स्वराज हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है" का नारा लगाया था उन्होंने भी हिन्दी के प्रचार-प्रसार का बीड़ा एकमन भाव से उठाया। उनके द्वारा प्रकाशित हिन्दी साप्ताहिक पत्र "हिन्दी केसरी" पर्याप्त लोकप्रिय रहा। लोकमान्य तिलक देवनागरी को "राष्ट्रलिपि" और हिंदी को "राष्ट्रभाषा" मानते थे। उन्होंने नागरी प्रचारिणी सभा, काशी के दिसम्बर, 1905 के अधिवेशन में कहा था-

> ***"भारतवर्ष के लिए एक राष्ट्रभाषा की स्थापना करना है, क्योंकि सबके लिए समान भाषा राष्ट्रीयता का महत्त्वपूर्ण अंग है। समान भाषा के द्वारा हम अपने विचार दूसरों पर प्रकट करते हैं। अतएव यदि आप किसी राष्ट्र के लोगों को एक-दूसरे के निकट लाना चाहें तो सबके लिए समान भाषा से बढ़कर सशक्त अन्य कोई बल नहीं है।"***

हिन्दी को सही अर्थों में हिन्दी बनाने में पं मदनमोहन मालवीय का योगदान भुलाया नहीं किया जा सकता। उन्होंने सन् 1907 ई. में साप्ताहिक हिन्दी "अभ्युदय" प्रारम्भ किया। यह पत्र सन् 1915 में दैनिक समाचार-पत्र बना। मालवीय जी ने हिन्दी प्रचार-प्रसार को गति देने के लिए सन् 1910 में प्रयोग (इलाहाबाद) से "मर्यादा" हिंदी मासिक पत्रिका और 20 जुलाई, 1933 "सनातन धर्म" हिंदी पत्र का प्रकाशन् शुरू किया था। मदन मोहन मालवीय हिन्दी के प्रेमी थे। इनकी प्रेरणा से "भारत", "हिन्दुस्तान" और "विश्वबन्धु" जैसे चर्चित पत्रों का प्रकाशन् शुरू हुआ था। उनके ही योगदान से हिन्दी को एक विषय के रूप में चुना गया और स्वतंत्र भारत के विश्वविद्यालय में उसको स्थान मिला। उन्होंने हिन्दी भाषा के विषय में स्पष्ट रूप से कहा था-

> ***"राष्ट्रीय शिक्षा अपनी उत्तमता के उच्च शिखर पर तब तक नहीं पहुंच सकती, जब तक जनता की***

मातृभाषा अपने उचित स्थान पर शिक्षा के माध्यम तथा सर्वसाधारण के व्यवहार के रूप में स्थापित न की जाए।"

भारत में स्वतंत्रता आंदोलन के अहिंसावादी नेता महात्मा गाँधी ने सन् 1917 में गुजरात के भड़ौच शिक्षा परिषद् के अधिवेशन में हिन्दी की चर्चा और अंग्रेजी का बहिष्कार करते हुए कहा कि "राष्ट्र की भाषा अंग्रेजी को राष्ट्रभाषा बनाना देश में "ऐस्पेरेण्टों" को दाखिल करना है। अंग्रेजी को राष्ट्रीय भाषा बनाने की कल्पना हमारी निर्बलता की निशानी है।" आगे उन्होंने सन् 1918 में हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अधिवेशन में हिन्दी के प्रति अपने प्रेम को प्रकट करते हुए कहा:

"आप हिन्दी को भारत का राष्ट्रभाषा बनाने का गौरव प्रदान करें। हिन्दी सब समझते हैं। इसे राष्ट्रभाषा बनाकर हमें अपना कर्तव्य-पालन करना चाहिए।"

दरअसल भाषा का प्रश्न मानवीय है, खासकर भारत में, जहां साम्राज्यवादी भाषा जनता को जनतंत्र से अलग करती है। हिन्दी और अंग्रेजी की स्पर्धा देशी भाषाओं और राष्ट्रभाषा के द्वंद में बादल गई है, मनों को जोड़ने वाला सूत्र तलवार करार दे दिया गया है, पराधीनता की भाषा स्वाधीनता का गर्व हो गई है। निश्चय ही इसके पीछे दास-मन की सक्रियता है।

स्वाधीनता में ही नहीं हिन्दी के प्रचार-प्रसार में आर्य समाज जैसे संस्थान का भी योगदान है। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने स्वराज, धर्म और हिन्दी के लिए आंदोलन किया। आर्य समाजकारी हिन्दी को "आर्य भाषा" का नाम दिया और अपने कार्यों को वे हिन्दी में करने लगे। आर्य समाज का सत्संग और सम्मेलन हिंदी में ही होता था। इसलिए हिंदी-प्रसार को मजबूत आधार मिला। आर्य समाज ने गुरूकुलों, कन्या-पाठशालाओं और महिला विद्यालयों की स्थापना की, जिनमें हिंदी की अनिवार्य शिक्षा व्यवस्था थी। गुरूकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय में सर्वप्रथम विज्ञान की शिक्षा हिंदी में देने की सफल व्यवस्था की गई। इस विषय में श्री इन्द्रविद्यावाचस्पति का कथन उद्धरणीय है,

"भारत में पहला शिक्षणालय, जिसमें राष्ट्रभाषा के माध्यम द्वारा सम्पूर्ण ज्ञान की शिक्षा का सफल परीक्षण किया गया, गुरुकुल काँगड़ी था।"

महर्षि दयानन्द ने लोक-भाषा को उपदेश का साधन बनाकर अपने मिशन् को लोकप्रिय और व्यापक बना दिया। बल्कि भविष्य में राष्ट्रभाषा बनने वाली आर्य भाषा को पुष्टि देकर राष्ट्र के स्वाधीनता-भवन की दृढ़ बुनियाद भी रख दी।

इस तरह देख सकते हैं कि स्वाधीनता संग्राम में हिन्दी की एक सर्वथा अलग भूमिका रही है।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन का 25वाँ अधिवेशन सन् 1936 में नागपुर में हुआ। डॉ. राजेन्द्र प्रसाद सम्मेलन के अध्यक्ष थे। श्री पुरुषोत्तमदास टण्डन के प्रस्तावानुसार दक्षिण में हिन्दी प्रचारार्थ "हिन्दी प्रचार समिति" का गठन किया गया। इसका प्रथम अधिवेशन सन् 1936 में वर्धा में हुआ। काका कालेलकर के सुझाव पर इसका नाम बदल कर "राष्ट्रभाषा प्रचार समिति" रखा गया। इस समिति का मुख्य उद्देश्य हिन्दी-प्रचार था और इसी आधार पर समिति मानती थी "एक ह्रदय हो भारत जननी" समिति ने हिन्दी प्रचार-प्रसार के लिए सन् 1938 से अपनी परीक्षाओं का संचालन शुरू किया। समिति ने जुलाई 1943 से "राष्ट्रभाषा" मासिक पत्रिका का प्रकाशन् शुरू किया। इसके पश्चात् "राष्ट्रभारती" पत्रिका का प्रकाशन् किया गया। इस समिति के देश से बाहर लंका, स्याम, सुमात्रा, मॉरिशस, इंग्लैंड आदि देशों में केन्द्र हैं।

समिति सम्मान और पुरस्कार से भी हिन्दी प्रचार-प्रसार को दिशा प्रदान करती है। इस समिति की गतिविधियों से हिन्दी को विशेष बल मिला है।

इनके अतिरिक्त हिन्दुस्तानी प्रचार सभा, वर्धा; गुजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद; हिन्दी विद्यापीठ, मुम्बई; महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा सभा, पूना और बिहार राष्ट्रभाषा, पटना, हिन्दी प्रचार सभा ट्रस्ट आदि की हिन्दी प्रचार-प्रसार भूमिका उल्लेखनीय है।

वस्तु एवं सेवा कर (जीएसटी)

लीना ढमढेरे

कर किसी भी अर्थव्यवस्था की रीढ़ की हड्डी होती है। भारतीय अर्थव्यवस्था में प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष कर प्रचलित है। अप्रत्यक्ष कर अत्यंत ज़टिल तथा सार्वभौमिक प्रकृति का होने के कारण निम्न वर्ग को प्रभावित करते हैं। अत: इनमें सुधार वांछनीय है। भारत सरकार ने कर सुधार हेतु 122वें संविधान संशोधक विधेयक को मंजूरी दी है, जो 01 जुलाई 2017 से पूरे देश में लागू हो गया है। एक देश, एक बाजार तथा एक कर पर आधारित इस कर व्यवस्था से वस्तुओं एवं सेवाओं की लागत में स्थिरता आएगी। जीएसटी लागू होने पर उत्पाद कर, बिक्री कर, सेवा कर जीएसटी में समाहित हो जाएंगे। जिससे घरेलू एवं दैनिक उपयोग की वस्तुओं के मूल्यों में कमी आएगी। इससे उपभोग में वृद्धि होगी, फलस्वरुप उत्पादन, विनिर्माण उद्योग एवं विदेशी निवेश में वृद्धि होगी और रोजगार के अवसर बढ़ेंगे। यह त्रिस्तरीय है। पहला सीजीएसटी, दूसरा एसजीएसटी एवं तीसरा आईजीएसटी है जो केन्द्रीय, राज्य एवं अंतर्राष्ट्रीय व्यापार कर होगा। इससे संघीय ढाँचा मजबूत होगा। कर निर्धारण हेतु जीएसटी परिषद का गठन किया गया है इसके अध्यक्ष केंद्रीय वित्त मंत्री हैं।

हालांकि इतने बड़े आर्थिक सुधार को लागू करने में कुछ मुख्य चुनौतियाँ भी हैं जैसे - आरम्भिक वर्षों में राज्यों के राजस्व कमी की क्षतिपूर्ति, विवाद निस्तारण, नई कर प्रणाली का कर्मचारियों को प्रशिक्षण, थ्रेसोल्ड लिमिट निर्धारण। जीएसटी लागू होने से कुछ सेवाओं के महंगे होने की संभावना है। अंतर्राज्यीय व्यापार शुल्क घटने से व्यवसायी तथा निवेशक क्षेत्रीय सुगमता को महत्व देंगे।

फिर भी सरकार द्वारा अच्छी रणनीति एवं न्यायिक व्यवस्था द्वारा इसे सुचारू रूप से व्यवहारिक बनाया जा सकता है। वैश्विक प्रतिस्पर्धा में भारतीय अर्थव्यवस्था की पहचान बनाने तथा व्यापारिक सुगमता हेतु ऐसे प्रभावकारी परिवर्तन अत्यावश्यक है।

जीएसटी एक अप्रत्यक्ष कर यानि indirect tax है जो भारत में 1 जुलाई 2017 से लागू है। यह वस्तुओं एवं सेवाओं दोनों पर लागू होगा। दुनिया के लगभग 160 देश पहले ही लागू कर चुके हैं।

Goods & Services का क्या अर्थ है? Goods यानि वे चीजें जिनका हम प्रयोग कर सकते हैं या जिनका उपभोग कर सकते हैं... जैसे खा-पी सकते हैं। ये टैन्जिबल चीजें हैं जिन्हें हम छू सकते हैं... देख सकते हैं और इन्हें खरीद सकते हैं। जैसे कि

- ★ किताबें
- ★ सीडी
- ★ खाने-पीने की चीजें
- ★ फर्नीचर
- ★ आवासीय सम्पत्ति
- ★ प्रिंटर्स, कम्प्युटर्स और कम्प्युटर हार्डवेअर इत्यादि
- ★ गाड़ियाँ

★ कपड़े सेवायें यानि हम किसी तरह की सेवा लेते हैं और उसके बदले में पैसे देते हैं। यह intangible in nature होती है, जैसे
  - जब हम पार्लर में हेयर कट कराते हैं तो इसमें बिल सर्विस टैक्स जुड़ा होता है.
  - होटल में खाना खाने पर भी हम सर्विस टैक्स अदा करते हैं।
  - किसी CA की सर्विस लेने पर या आर्किटेक्स से घर बनवाने पर भी हम सर्विस टैक्स देते हैं। इस प्रकार जो सर्विस प्रोवाइडर हैं वह अपनी सर्विसेस के लिए जनता से पैसे लेते हैं और उस में से सरकार के खाते में सर्विस टैक्स जमा करते हैं। अप्रत्यक्ष कर यह होता है ?

टैक्स दो तरह के होते हैं डायरेक्ट एंड इनडायरेक्ट टैक्स, डायरेक्ट टैक्स का उदाहरण एक नौकरीपेशा व्यक्ति द्वारा सरकार को दिए जाने वाला इनकम टैक्स है।

जब हम कोई सामान खरीदते हैं तो उसपर लिखी MRP के हिसाब से पैसे दे देते हैं। अगर हम ध्यान देते हैं तो MRP के बगल में लिखा होता है (inclusive of all taxes) यानी उस मूल्य में टैक्स भी जुड़ा होता है जो सरकार खजाने में जमा होता है। इस तरह सभी लोग indirectly, टैक्स देते हैं। इसलिए यह एक तरह का अप्रत्यक्ष कर है।

GST के बारे में कुछ ज़रूरी बातें

भारत की अप्रत्यक्ष कर संरचना (Indirect Tax Structure) में सुधार करने हेतु GST लाना एक बहुत बड़ा कदम माना गया है।

जीएसटी एक उपयोग आधारित कर है अर्थात यह कर उस राज्य के द्वारा वसूल किया जाएगा जहाँ वस्तुओं एवं सेवाओं का उपयोग किया जाएगा न कि उस राज्य के द्वारा जहाँ ये वस्तुए एवं सेवाए निर्मित होंगी। जीएसटी के अंतर्गत अलग-अलग वस्तुओं एवं सेवाओं पर अलग-अलग दर लागू होंगी। सरकार द्वारा जीएसटी की दरें निर्धारित कर दी गयी हैं। मूल तौर पर सभी वस्तुओं एवं सेवाओं पर कर

★ 0%
★ 5%
★ 12%
★ 18% एवं
★ 28%

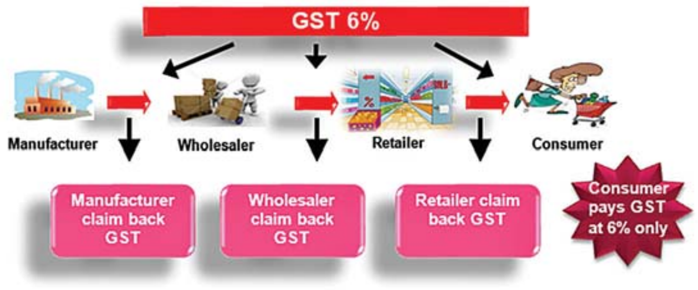

की दर से जीएसटी लगायी जाती हैं। विशेष रूप से वैभव की वस्तुओं (luxury items) पर 28% की दर लागू है। कुछ वस्तुएं ऐसी भी हैं जो जीएसटी के कार्यक्षेत्र से बाहर रखी गयी हैं। ऐसी वस्तुओं में मुख्य तौर पर -

★ शराब
★ पाँच पेट्रोलियम सामग्री जैसे-कच्चा तेल (Crude oil), पेट्रोल, डीज़ल, विमान टरबाइन ईंधन (aviation turbine) एवं प्राकृतिक गैस आदि।

ये कर समाप्त हो जायेंगे।

जीएसटी (GST) के लागू हो जाने पर सभी वस्तुओं एवं सेवाओं पर जीएसटी ही लगेगी अर्थात ज्यादातर अन्य सभी अप्रत्यक्ष करो को कर संरचना से हटा दिया जायेगा। जीएसटी के आने से समाप्त होने वाली राज्य स्तरीय (State level) एवं केंद्र स्तरीय (Central) टैक्सेज की सूची कुछ इस प्रकार हैं:

राज्य स्तरीय कर:

★ वैट (VAT)
★ सेन्ट्रल सेल्स टैक्स (Central Sales Tax)
★ एंट्री टैक्स एवं आक्ट्राई (Entry tax & Octroi)
★ इंटरटेनमेंट टैक्स (Entertainment Tax)
★ टैक्सेज ऑन लॉटरी, बेटिंग, गैम्ब्लिंग (Taxes on lottery, betting, gambling)
★ स्टेट सेस एवं सरचार्ज (State Cess and Surcharge)

केन्द्र स्तरीय कर:

★ सर्विस टैक्स (Service Tax)
★ सेंट्रल एक्साइज ड्यूटी (Central Excise Duty)
★ एडिशनल एक्साइज ड्यूटी (Additional Excise Duty)
★ एडिशनल ड्यूटी ऑफ़ कस्टम (Additional Duty of Custom)
★ सेंट्रल सेस एवं सरचार्ज (Central Cess and Surcharge)

चूँकि भारत में कर वसूल करने का अधिकार राज्य सरकार एवं केंद्रीय सरकार दोनों को है इसलिए जीएसटी को तीन भागों में विभाजित किया गया है:

1. स्टेट जीएसटी (State GST)
2. सेन्ट्रल जीएसटी (Central GST) एवं
3. इंटीग्रेटेड जीएसटी (Integrated GST)

राज्यान्तर्गत एक ही राज्य के अन्दर खरीद-बिक्री पर स्टेट जीएसटी एवं सेंट्रल जीएसटी दोनों लागू होंगे जिसे राज्य सरकार एवं केंद्रीय सरकार दोनों एक निर्धारित अनुपात में वसूल करेंगे।

अंतर-राज्यीय (Intra-State) दो या दो से अधिक राज्यों के बीच खरीद एवं बिक्री पर इंटीग्रेटेड जीएसटी लगेगा जो केंद्र सरकार द्वारा वसूल किया जाएगा।

जीएसटी के लाभ

भारत की वर्तमान कर-संरचना (Tax Structure) अत्यंत जटिल है। राज्य सरकार एवं केंद्रीय सरकार दोनों के द्वारा कर वसूले जाने की वजह से भारत में अलग-अलग प्रकार के कई कर मौजूद हैं। अलग-अलग करों की मौजूदगी के कारण व्यवसायिकों को कई दिक्कतों का सामना करना पड़ता है। वस्तु एवं सेवा कर लागू होने से इन समस्याओं का काफी हद तक समाधान हो जाएगा।

वस्तु एवं सेवा कर के लागू होने से सरकार एवं साधारण जनता दोनों का फायदा होगा। जीएसटी को लागू करने के पीछे उद्देश्य इन समस्त लाभों को अर्जित करना है:

1. व्यापार करने में आसानी

जीएसटी के लागू होने से ज्यादातर सभी अप्रत्यक्ष कर समाप्त हो जाएँगे जिसकी वजह से व्यवसायियों को अब न तो अलग- अलग प्रकार के कर देने पड़ेंगे और ना ही विभिन्न प्रकार के कर विवरणी का सामना करना पड़ेगा। अब सभी व्यवसायी केवल एक अप्रत्यक्ष कर, GST Registration लेकर जीएसटी का भुगतान करेंगे एवं केवल एक प्रकार की कर विवरणी, जीएसटीआर (GSTR), जमा करेंगे।

2. टैक्स पर टैक्स व्यवस्था की समाप्ति

पहले उत्पाद कर (Excise Duty) एवं सेवा कर (Service Tax) केन्द्रीय सरकार द्वारा संग्रह किया जाता था और (VAT) एवं सेल्स टैक्स (Sales Tax) राज्य सरकार द्वारा किया जाता था। जिस वजह से केंद्रीय सरकार को दिए जाने वाले करों का क्रेडिट (Input Tax Credit), राज्य सरकार को दिए जाने वाले करों पर एवं राज्य सरकार को दिए जाने वाले करों का क्रेडिट (Input Tax Credit), केंद्रीय सरकार को दिए जाने वाले करों पर नहीं मिल पाता था। इसके कारण करों पर कर लग जाते थे। परंतु जीएसटी के आ जाने के बाद विभिन्न प्रकार के अप्रत्यक्ष करों के समाप्त हो जाने से करों पर कर लगाने की व्यवस्था समाप्त हो जाएगी।

3. कर के बोझ में कमी

वस्तु एवं सेवा कर के लागू हो जाने से ज्यादातर सभी प्रकार के अप्रत्यक्ष कर समाप्त हो जाएँगे और सभी को केवल एक कर, जीएसटी देना पड़ेगा। इन बदलावों की वजह से कर के बोझ में कमी आएगी।

4. वस्तुओं एवं सेवाओं के मूल्य में कमी

अप्रत्यक्ष कर-संरचना (Tax Structure) में बदलाव एवं विभिन्न प्रकार के अप्रत्यक्ष करों के समाप्त हो जाने की वजह से वस्तुओं एवं सेवाओं पर कर पहले की तुलना में कम लगेगा जिससे वस्तुओं एवं सेवाओं के मूल्य में कमी आएगी।

5. टैक्स चोरी में कमी

जीएसटी के अंतर्गत कोई भी विक्रेता इनपुट टैक्स क्रेडिट (खरीदे हुए सामान पर दिए गए कर का लाभ) तभी उठा सकता है जब वह व्यक्ति जिससे उसने सामान खरीदा है, सरकार को अपने हिस्से का कर अदा कर दे एवं उस खरीदार को जिसे वह सामान बेच रहा है इनवॉइस (invoice) अदा कर दे। अतः यह प्रक्रिया एक श्रृंखला प्रणाली (Chain System) में काम करती है जिससे वर्तमान समय में होने वाली कर की चोरी के समाप्त हो जाने की काफी हद तक संभावना है।

6. सरकार के कर-आय में वृद्धि

कर में होने वाली चोरी में कमी होने से केन्द्र एवं राज्य सरकार दोनों को काफी फ़ायदा होगा। इसके अलावा अप्रत्यक्ष कर-संरचना में सुधार होने से कर-संरचना सरल हो जाएगी जिससे अधिक से अधिक लोग कर देंगे और इसकी वजह से सरकार के कर-आय में वृद्धि होगी, जिसका प्रयोग देश की प्रगति के लिए किया जा सकता है।

कोई भी बदलाव चाहे वह हमारे भले के लिए ही क्यों न हो कष्टकारी लगता है। शुरू में GST की वजह से भी समस्याएं आएँगी लेकिन long term में हमें इसके कई फायदे मिल सकते हैं। कुल मिलाकर ये उम्मीद की जा सकती है कि जीएसटी के लागू हो जाने से भारत की अर्थव्यवस्था पर सकारात्मक बदलाव होगा।

मजदूर से उप महाप्रबंधक तक का सफर

दिलीप चन्दनशिवे

मैं, भारत के संविधान निर्माता परम पूज्य बाबा साहब आंबेडकर का आत्म चरित्र पढ़कर प्रभावित हुआ था। मुझे विपरीत परिस्थिति में पढ़ने और बढने की प्रेरणा उनसे मिली। मेरे माता-पिता और मुझे ज्ञान देने वाले, पथप्रदर्शक गुरुजन के आशीर्वाद से नौकरी की तलाश में घर से निकल पड़ा। मुझे जो भी काम मिला वह करता रहा, चाहे भंगार का काम हो, हमाली का हो, हाथ गाड़ी खिचने का हो, या लोकल गाड़ी में चिक्की, गोली बेचना हो, किसी भी हाल में अपने परिवार को मदत करना, अपना काम इमान और इतबार से करना तथा आगे पढ़ते रहना मेरा लक्ष्य था। मेरे पिताजी अलकॉक एशडाउन एंड कंपनी में काम करते थे कंपनी एकाएक बंद हो गयी थी । पिताजी बुढ़ापे के कारण थक गये थे।

कुछ दिन बाद अलकाक एश डाउन एंड कंपनी को माझगांव डॉक ने खरीद लिया और कंपनी के बेकार कामगार और उनके परिवार सदस्यों को नौकरी देने का प्रबंध किया था। पिताजी के जरिये अर्जी करने पर मुझे माझगांव डॉक लिमिटेड में मजदूर के पद पर नौकरी मिली। 12 सिंतबर 1984 को मजदूर के पद पर टि. नं.82295 का लाल हाजिरी कार्ड लेकर अलकाक के जैक अप रिंग वेल्डिंग डिपार्टमेन्ट में नियुक्त हुआ।

पहले दिन दूसरी पाली में ड्यूटी पर आया, बारिश का मौसम था परन्तु मेरे पास छाता नहीं था। खाना खाने के लिए पैसे नहीं थे। घर वापस जाने के लिए किराया नहीं था। इसी दरम्यान पिताजी के मित्र से कम्पनी में मुलाक़ात हुई। उन्होंने 1 रुपया 15 पैसे का कूपन दिया और बतलाया की कैटीन कहाँ है। विभाग में मजदूरों के पास बॉयलर सूट था मेरे पास कुछ नहीं था। मेरे कपड़े बारिस से भीगे थे। वेल्डर को रॉड देना, पावर कम ज्यादा करना, स्लिग करना, चिपिंग करना मेरा काम था। कार्य समाप्त होने पर मन में आता था कि मैंने आज इतना ही काम किया। क्या मुझे आज का वेतन मिलेगा। इतने में खाने की छुट्टी हो गयी कैटीन में जाकर खाना खा कर बड़ा आनंद हुआ। मुझे इस कंपनी में 1.15 रु में पेट भर खाना मिला, फिर डटकर काम करने की स्फूर्ति मिली। काम का समय खत्म होते ही वेल्डर, मजदूर हाथ पाँव धोकर घर जाने की तैयारी करने लगे।

मेरे दिल में डर महसूस हुआ कि मैं कैसे घर पहुँचुंगा, मेरे पास तो घर जाने के लिए किराया नहीं है। वैसे ही बिना टिकट घर पहुँचा। दूसरे दिन पूरी तैयारी से अपनी ड्यूटी पर हाजिर हुआ। नियमित रूप से काम करना सुबह उठ कर कॉलेज जाना और दूसरी पाली में काम पर आना मेरी दिनचर्या थी। विभाग में मिस्त्री नामक व्यक्ति ने मुझे अपना बॉयलर सूट दिया था। धीरे-धीरे लोगों से पहचान होने लगी। मैं हमेशा विभाग का नोटिस बोर्ड पढ़ा करता था। एक दिन विभाग के नोटिस बोर्ड पर ऑफिस अटेंडेंट भर्ती की सूचना जारी हुई मैंने ऑफिस अटेंडेंट की पोस्ट के लिए अर्जी कर दिया।

यहाँ काम करते हुए मुझे 11 महीने हो चुके थे इसी दरम्यान मजदूरों के व्यवहार का अनुभव हुआ। पुराने मजदूर नए मजदूर से मिलजुल कर नहीं रहते थे। हमेशा ओवर टाइम के लिए विवाद होता था सीनिअर कर्मचारी जूनियर को ओवर टाइम नहीं देना चाहते थे। कुछ दिनों बाद ऑफिस अटेंडेंट का कॉल लेटर आया। साक्षात्कार के लिए बुलाया गया और मेरा चयन कार्यालय परिचर पद पर हुआ। 6 जुलाई 1985 से मैं ऑफिस अटेंडट का कार्य करने लगा। मुझे नया टि. न. 5979 देकर मशीन अकाउंट डिपार्टमेन्ट में भेजा गया। इस डिपार्टमेन्ट में दो पाली में काम होता था। मुझे दूसरी पाली में भेजा गया। मैं नियमित रुप से सवेरे कालेज जाकर दोपहर बाद काम पर आया करता था।

मुझे जो भी काम दिया जाता था चाहे स्टाफ का हो या ऑफिसर का हो, मन लगाकर काम करता था। पूर्व अनुभव के अनुसार पुराने ऑफिस अटेंडेंट भी नये ऑफिस अंटेंडेंट के साथ मिल जुल कर नहीं रहते थे। मैं अपना काम पूर्ण होने के बाद कम्प्युटर की वेस्ट स्टेशनरी पर अपनी मैथ्स/एकाउंट्स की प्रैक्टिस किया करता था। काम खत्म होने ही फालतू बाते करने से अपनी पढ़ाई में मन लगाना मैं उचित समझता था। उस समय वहाँ पर टाइप राइटर भी थे। मुझे यह साधन नये लगते थे क्योंकि इसका उपयोग मैंने कभी नहीं किया था। ऑफिस में इसका उपयोग होता था।

मेरे किसी भी रिस्तेदार के पास टेलीफोन नहीं था। यहाँ टाइप राईटर चलाने वाले टाइपिस्ट थे। वह टाइप राइटर कैसे चलाते हैं। मैं समझने का प्रयास करता था। समय मिलने पर प्रैक्टिस किया करता था। दिनांक 27-09-1986 को मैं परमानेंट हुआ। प्रमोशन् के बाद बहुत खुशी हुई कि मैं हमेशा के लिए मजदूर की नौकरी नहीं करुँगा। नया काम मजदूर से अच्छा है यहा छाँव है, बारिश और धूप की परेशानी नहीं है।

पहले से यह बहुत अच्छा है। उस समय मुझे कंपनी के बाहर किये कार्यों की याद आयी। वह काम मैंने 5वीं कक्षा से 12वीं कक्षा तक किया था। भंगार की दुकान में काम करना, आधा दिन स्कूल जाना। कभी हाथ गाड़ी खींचना, हमाली करना, गाड़ी में चिक्की बेचना, खारी बिस्किट बेचना, कभी कड़िया के हाथ के नीचे काम करना। यह पहले के सभी कार्यों से कितना अच्छा है। मैं यह काम भी कर सकता हूँ, कॉलेज भी जा सकता हूँ। मैं कितना भाग्यशाली हूँ। अब मैं यहाँ हमेशा काम कर सकता हूँ। यह सब सोच कर मैं आनंदित होता था। अपना काम मन लगाकर करता था वहाँ अनेकों अच्छे ऑफिसर थे जिससे मुझे प्रेरणा मिलती थी।

अपनी पढ़ाई के दौरान एक दिन मेरे मन में आया। मजदूर से अच्छा पीऊँन का काम है और पीऊँन से अच्छा स्टाफ का जैसें क्लर्क, टाइपिस्ट, ऑफिस सुपरीटेन्डेट, उनको केवल ऑफिसर ही ऑर्डर देते हैं। यदि मैं स्टाफ बनना चाहू तो मुझ में उनकी बराबरी की शिक्षा होनी चाहिये। कंपनी जो परीक्षा लेगी वह पास होना जरूरी है। उसी समय मेरे डिपार्टमेन्ट में TPPO पद के लिए भर्ती निकली। उसके लिए केवल 12वीं पास और टाईपिंग का ज्ञान आवश्यक था। मैंने TPPO पद के लिए आवेदन कर दिया और टाइपिंग की प्रेक्टिस करने लगा। परीक्षा की तिथि आने पर परीक्षा में बैठा परंतु टाईपिंग में जिनकी अच्छी स्पीड थी वे पास हो गये मेरा सिलेक्शन् नहीं हुआ। फिर मैंने भी बाहर टाइपिंग का क्लास लगवाया। कॉलेज की पढ़ाई और टाइपिंग का क्लास करके थक जाता था। मैंने मन में सोचा अगर मुझे पिउन से स्टाफ में जाना है तो मुझे यह सब करना ही होगा। मैं टाइपिंग का प्रयास कर रहा था।

मेरे प्रयास की जानकारी कुछ स्टाफ सहयोगियों को लगी। वे कहने लगे अरे यह सब तुम्हारे बस की बात नहीं है। अपना काम करो कई आए और कई चले गए वहाँ मौजूद सभी स्टाफ और ऑफिसर हंसने लगे। परंतु मैंने अपना प्रयास जारी रखा कुछ दिन बाद फिर से TPPO की भरती निकली। फिर से आवेदन किया और लगातार अभ्यास करता रहा। मेरा आत्म विश्वास बढ़ गया था। फिर से परीक्षा में बैठा। पास होने पर बहुत खुशी हुई। एक बात की मुझे याद आयी कि मेहनत करने से तकदीर भी बदल सकती है। किसी शायर ने कहा है ''अकक्ल के दुश्मन जो तकदीर के साखी अरे मेहनत कभी इन्सान की जाया नहीं जाती''। कुछ लोग प्रशंसा करने लगे।

कुछ कहने लगे साहब के आगे-पीछे चलकर प्रमोशन् लेने वाले बहुत हैं। सुनकर मन बहुत दुखी हुआ। मैं 15-01-1988 से TPPO बना फिर मुझे नया टी नं 86557 दिया गया। यहाँ भी अपना काम मन लगाकर किया करता था एक साल बाद कनफर्म हुआ। उसी समय B-COM पास हुआ था। डिपार्टमेन्ट में मिठाई बांटी तो कुछ लोग प्रशंसा करने लगे। उसी समय डिपार्टमेन्ट के लोगों को बताया कि मैं यहाँ भी रुकने वाला नही हूँ। आगे ऑफिसर बनने का प्रयास करूंगा। उस वक्त कुछ लोग कहने लगे ''अरे जिस दिन तुम यहा ऑफिसर बनोगे उस दिन हम यहाँ के जाइंट मैनेजर होंगे''। किसी ने कहा अगर तुम यहाँ ऑफिसर बनोगे तो तुम्हारी पार्टी का खर्चा मैं करूंगा।

उन सभी लोगों को पूर्ण विश्वास था मैं ऑफिसर नहीं बन सकता हूँ परंतु यही शब्द मुझे आगे चलकर प्रेरणा देने वाले हो गए। उस वक्त मैंने आगे पढ़ने का फैसला कर लिया। उस समय कम्प्युटर नया-नया आया था मैंने पोस्ट ग्रेजुएशन् डीसीएम के लिए एंट्रेंस परीक्षा दिया। ऑफिसर की परीक्षा के लिए डिप्लोमा जरूरी था। सुबह उठकर काम पर जाना और रात को पढ़ाई करना जारी था। मेरे घर से कॉलेज काफी दूर था। समय बचाने के लिए मैंने अपने मित्र से एक पुरानी सायकिल खरीद ली और साइकिल से कालेज जाने लगा इस प्रकार थकावट भी कम होती थी। इसी दरम्यान कंपनी में लेखा ऑफिसर की भर्ती निकली "ग्रेजूएट शिक्षा धारक फायनांस ऑफिसर के लिए अर्जी कर सकते हैं।" मैंनें बी.कॉम की शिक्षा के आधार पर अर्जी किया और परीक्षा की तैयारी करने लगा। बार बार परीक्षा पोस्टपोंड होती थी। मैंने फायनान्स के सभी डिपार्टमेंन्ट में जाकर स्टाफ से जानकारी प्राप्त करता था।

प्रत्येक डिपार्टमेन्ट की जानकारी प्राप्त करके सभी फायनान्स स्टाफ और ऑफिसर के काम करने की प्रणाली को रात में लिखता था। साथ ही 11वीं से लेकर 15वीं तक के लेखा की किताबों का अध्ययन करता था। हर दो, तीन महीने में परीक्षा पोस्ट पोंड हो जाती थी। आखिर में तारीख निश्चित हो गयी। कम्पनी मैनेजमेंट ने परीक्षा पूर्व एक प्रोग्राम आयोजित किया था जिसमें एक सीनियर फायनान्स अधिकारी सभी कैंडिडैट को माझगांव डॉक अकौण्टंसी की होने वाली परीक्षा, उसके नियम के बारे में सभी को जानकारी दे रहे थे। प्रोग्राम खत्म हुआ कंपनी अकाउंट की जानकारी के साथ ही 11वीं से लेकर 15वीं तक के एकाउंटसी के किताबों का अध्ययन कर परीक्षा में शामिल हुआ। मेरा पेपर औरों से अच्छा हुआ था और पूर्ण आत्म विश्वास था कि, मैं पास जरूर हो जाऊंगा परंतु ऐसा नहीं हुआ।

मन ही मन बहुत दुखी हुआ क्योंकि बहुत प्रयास करने के बावजूद भी मुझे कामयाबी हासिल नहीं हुई। इस बात का पता मेरे गुरुजन को लगा, उन्होंने मुझे समझाया और कहा देखो भाई, तुम्हें प्रयास करने बावजूद भी सफलता नहीं मिली। इसका मतलब यह नहीं है कि वह तुम्हें मिलने ही वाली नहीं थी। आपने दुखी मन से कहो कि ''ए दिल तू फिक्र मत करना कादिर करीम है अरे देने दिलाने वाले गफ़ूर रहीम हैं''। दुख भूल कर दूसरा प्रयास जारी रखा। डीसीएम की पढ़ाई के समय बहुत ही हादसे हुए थे। मेरे छोटे भाई रवि और बहन आभा की मृत्यु परीक्षा के दौरान हुई थी। उस समय मेरी मनः स्थिति परीक्षा के अनुकूल नहीं थी और लगातार मेरे कानो में रोने की आवाज गूँजती रहती थी। परीक्षा का परिणाम प्रतिकूल आया। 5 माह बाद मैंने फिर से नामांकन कराया और धीरे-धीरे परीक्षा की तैयारी करने लगा। अचानक उसी समय पिताजी का स्वर्ग वास हो गया। तीसरे हादसे से में हिल गया और डीसीएम परीक्षा का परिणाम फिर नाकाम हुआ। मेरे पिताजी अपने ज़माने में क्लर्क को भी साहब कहकर बुलाते थे। पिताजी मेरे बारे में दूसरों से कहते थे कि मेरा बेटा साहब है। पिताजी की याद मैंने गाँव के मंदिर के लिए 2000 ईंट का दान किया। दूसरी वर्षी पर गाँव वालों को सामूहिक भोजन कराया। तीसरे वर्ष दृढ़ निश्चय किया कि इस वर्ष डीसीएम की परीक्षा पास करके दिखाऊंगा। तैयारी के लिए कंपनी से छुट्टी लिया और रोज 12 से 16 घंटा पढ़ाई कर पूरे विश्वास से परीक्षा में शामिल हुआ, मेहनत का परिणाम सामने आया। परीक्षा पासकर लिया। कुछ दिन बाद डिपार्टमेंट में ही ऑफिसर की भर्ती निकली। जिसके लिए ग्रेजुएट और कम्प्युटर का पोस्ट ग्रेजुएट डिप्लोमा होना आवश्यक था।

मैंने आवेदन किया और पूर्ण तैयारी से अध्ययन करके परीक्षा दिया। परीक्षा में पास हुआ और मेरा सिलेक्शन् कनिष्ठ अभियंता के पद के लिए हुआ। नियुक्ति पत्र मिलने पर बहुत खुशी हुई। कम्पनी में अधिकारी की परीक्षा में मैं पास हो गया था और मुझे नियुक्ति पत्र भी मिला था। यह जानकर मुझे ख़ुशी के मारे रातभर नींद नहीं आई। अपनी ख़ुशी मैं किसको बताता। मेरी पत्नी तथा माताजी भी अशिक्षित थी। सुबह के पाँच बजे चाल के सभी लोग सरकारी नल पर पानी भरने आते थे। मैं भी पानी भरने गया वहाँ मेरी मुलाकात मेरे एक गुरु से हुई। मैने अपनी ख़ुशी उनके बताई। वे खुश होकर मुझे अंग्रेजी में बधाई दिये। मेरा मन बाग-बाग हो गया। मेरी ख़ुशी का ठिकाना नहीं था। कार्यालय में शुरू के छह महीने मुझे आभास नहीं हुआ कि मैं अधिकारी हो गया हूँ क्योंकि उसी विभाग में मैं 12 साल टीटीपीओ था। मेरे मित्रों का व्यवहार बदल गया उन्होंने अपनी गलत कथनी और विभाग के लिए मुझसे क्षमा माँगी। मैंने उनका आभार माना और कहाकि आपकी तरह मैं भी कम्पनी का नौकर हूँ। आप लोग मेरे भलाई के लिए ही बोले होगे। मुझे कोई शिकायत नहीं हैं। 23 जून 1997 से मुझे फिर नया टी.नं. 99088 दिया गया। फिर नियमित रूप से अपना नया काम एकाग्रता पूर्वक करने लगा। आज भी करता हूँ और आगे भी करता रहूँगा। ऑफिसर प्रमोशन् नियम के अनुसार होता रहा। 01 जुलाई 2002 से वरिष्ठ अभियंता 1-7-2005 से सहायक प्रबन्धक, 01-07-2007 से उप प्रबन्धक, 01-07-2010 से प्रबंधक, 01-07-2013 से मुख्य प्रबन्धक, 01-07-2017 से उप महाप्रबन्धक के पद पर प्रमोशन् हुआ है। मैं अब सोचता हूँ मुझे और आगे जाने का मौका नहीं मिला तो कोई बात नहीं मगर जीवन में पीछे तो नहीं गया। बाबा साहब आंबेडकर ने कहा है कि ''जो इतिहास भूलता है वह इतिहास नहीं बना सकता।'' मैं भी इतिहास नहीं भूलता कि मैं मजदूर था, पीउन था, TPPO था। आज भी मेरी जान उस मजदूर में, पीउन में, TPPO में है।

मुझे माझगाँव डॉक शिपबिल्डर्स लिमिटेड प्रबंधन पर अभिमान है।

गजल

आजाबे जिन्दगी

एच. यू . सिद्दीकी

जिन्दगी आजाब है कुसूर है दिल का
न कोई रास्ता है न पता है मंजिल का ?

क्यों जीते हैं किसके लिए जीते हैं
कुछ पता नहीं है फिर भी सब जीते हैं
भटक रहे हैं सभी पता नहीं है साहिल का ?
न कोई रास्ता है न पता है मंजिल का

ऐ आसमान तेरे चमन में लाखो सिंतारे हैं
उन्हें भी एक सितारा दे दो जो बेसहारे हैं
काश कोई पूछता हाल टूटे हुए दिल का ?
न कोई रास्ता है न पता है मंजिल का

तड़प रहा है दिल सबका जल रहा सीना
दवा नहीं है इसकी फिर भी पड़ रहा जीना
बार बार वार होते हैं दिल पे पता नहीं है कातिल का ?
न कोई रास्ता है न पता है मंजिल का

बेचैन सी रहती हैं हवायें - हर तरफ बेकली हैं
बेबस है जिंदगी हर तरफ खलबली है
न सोचा है क्या होगा अंजाम जिन्दगी का ?
न कोई रास्ता है न पता है मंजिल का

भटक रहे हैं सभी जाने कहाँ मुकाम होगा
न सोचा है अंजामें जिन्दगी क्या अंजाम होगा
कही पे गम ही गम हैं कहीं माहौल है खुशी का ?
न कोई रास्ता है न पता है मंजिल का ?

जिन्दगी आजाब है या कुसूर है दिल का
न कोई रास्ता है न पता है मंजिल का ?

श्री प्रकाश जावड़ेकर, मानव संसाधन मंत्री से बीएमएल मुंजल पुरस्कार, 2017 प्राप्त करते हुए श्री एसएस कांबळे,मप्र(मा.सं एवं क.सं) एवं श्री संजय मिश्रा, प्र (मा.सं-अ)

माझगांव डॉक शिपबिल्डर्स लिमिटेड के अध्यक्ष एवं प्रबंध निदेशक, कमोडोर राकेश आनन्द, 21 जुलाई 2017 को संपन्न मुंबई टॉलिक की 59वीं बैठक का अध्यक्षीय सम्बोधन करते हुए।

माझगांव डॉक शिपबिल्डर्स लिमिटेड
राष्ट्र के पोत निर्माता

Skill India
कौशल भारत - कुशल भारत

Digital India
Power To Empower

स्वच्छ भारत
एक कदम स्वच्छता की ओर